श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

भागवत-पत्रिका

वर्ष १६ | कार्त्तिक सम्वत् २०२७ | संख्या ६

नवम्बर १९७०

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

सम्पादक—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गौडीय मठ, पो० (मथुरा) उ० प्र०

संस्थापक—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद
परमहंसस्वामी १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी

वर्तमान सभापति—आचार्य एवं नियामक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

प्रचार संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघ—

[१] त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
[२] त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
[३] विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[४] पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम० ए०, पी-एच० डी०
[५] डा० श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[६] पण्डित वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
[७] पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
[८] पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
[९] पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम० ए०

कार्याध्यक्ष—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

{वार्षिक भिक्षा ५) रु०

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृ.सं.
१. श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि (श्रीब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्)	भगवान् श्रीश्रीमद्वेदव्यासजी	११३
२. नन्दनन्दनकी अद्भुत शोभा (पद्य)	भक्तवर सूरदासजी	११६
३. मानव-जातिका परम कर्त्तव्य	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर	११७
४. भक्तकी भगवानसे प्रार्थना (श्लोक)	(पद्यावलीसे संग्रहीत)	११९
५. प्रश्नोत्तर (भक्त्यङ्ग)	जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	१२०
६. भगव नामके परम गायक महाभागवतवर नारदजी	वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न काव्यतीर्थ	१२१
७. श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (षष्ठ धारा) (श्रीकृष्ण-लीलाका परिचय)	जगद्गुरुॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	१२६
८. श्रीमद्भागवतके टीकाकार (श्रीसुदर्शन-सूरी)	डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी एम ए., पी.एच.डी.	१२९
९. सन्दर्भ-सार (भक्तिसन्दर्भ-१०)	त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज	१३१
१०. प्रचार-प्रसंग	निजस्व संवाददाता	१३५

श्रीभागवत पत्रिकाके सोलहवें वर्षकी

विषय-सूची

क्र०सं०	विषय	प०सं०।पृ०सं०
१.	ॐ विष्णुपाद १०८ ····· केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें ··· क्षुद्र पुष्पांजलि	११।२४६
२.	गुरुवर केशव ! दर्शन दीजै	१०।२२२
३	गुरुके क्या लक्षण हैं ? (श्लोक)	१०।२१७
४	गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति (कविता)	४।७८
५.	गोपीजन मनमोहन-श्याम (कविता)	५।९१
६.	ग्रन्थालोचन (ग्रन्थ-समीक्षा)	५।१११
७.	जड़ साहित्य और भगवद्भक्ति	१-२।३१, ३।५४
८.	तत्वज्ञान प्राप्तिका उपाय	५।९४
९.	नन्दनन्दनकी अद्भुत शोभा (पद्य)	६।११६
१०	नामरसिक भक्तकी लालसा (श्लोक)	१-२।१२
११.	परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रील गुरुदेवकी आविर्भाव-तिथिपर तदीय श्रीचरणकमलोंमें दीन-हीन दासाधमकी क्षुद्रातिक्षुद्र पुष्पाञ्जलि	१०।२२३
१२.	परमाराध्यतम १०८·····केशव गोस्वामी महाराजकी परमपुनीत आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें दीनहीनकीभावपूर्ण पुष्पाञ्जलि	१०।२२१
१३	परमाराध्यतम ॐविष्णुपाद १०८·····केशव गोस्वामी महाराजकी परमपुनीत आविर्भाव तिथिपर दीनहीनकी पुष्पाञ्जलि	१०।२१९
१४.	पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराजका स्वधामगमन	१-२।२४
१५.	प्रचार-प्रसंग	१-२।३६, ४।८५, ६।१३५, ९।२०७
१६	प्रश्नोत्तर [योगव्रतादि १-२।९; भजनक्रिया ३।५१; अनर्थ-निवृत्ति ४।७३; निष्ठा-रुचि-आसक्ति एवं भाव ५।९८; भक्ति-अंग ६।१२०; नवधाभक्ति ७।१४३; आत्म-धर्म ९।१९२, शरणागति ११।२४०; नाम-कीर्तन १२।२६२]	
१७.	प्रेम-पुकार (कविता)	४।४६७
१८.	प्रेम धर्मका स्वरूप	११।२३७
१९.	भगवत् कृपा द्वारा ही प्रेमभक्ति लभ्य है (श्लोक)	३।६४
२०.	भगवन्नामके परम गायक महाभागवतवर नारदजी	५।१०८, ६।१२१
२१.	भगवन्नामोच्चारणसे अजामिलको भगवद्प्राप्ति	१५।२४८, १२।२७०
२२.	भगवत्सेवामय-दर्शन	७।१४०
२३	भगवानसे कृपा-प्रार्थना	४।७७
२४.	भक्तकी भगवानसे प्रार्थना (श्लोक)	६।११९

क्र० सं०	विषय	पं० सं०/पृष्ठ सं०
२५.	भक्तराज प्रह्लादकी भक्तिसाधना व उपदेश	१-२।१७
२६.	भक्तिरहित कर्मोंकी निरर्थकता	१-२।१६
२७.	मदीश्वर परमाराध्यतम ..... केशव गोस्वामी महाराजकी परमपुनीत आविर्भाव-तिथि पूजाके उपलक्ष्यमें दासाधमकी प्रसूनाञ्जलि	१०।२१८
२८.	मानव जातिका परम कर्तव्य	४।६८, ५।९२, ६।११७
२९.	मुरलीका सर्वचित्ताकर्षकत्व (कविता)	४।७२
३०.	रे मन ! गौरचरण चित्त दीजै (पद)	३।१५३
३१.	वासुगाँवमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा	१-२।२९
३२.	विरह-संवाद	११।२५४
३३.	वैष्णवोंकी अलौकिकता	१२।२५४
३४.	श्रीकृष्णके नयनोंकी जादू (कविता)	११-२।३५
३५.	श्रीगुरुतत्त्व-विचार	१०।२११
३६.	श्रीगोविन्द-भजनकी महिमा (श्लोक)	१-२।८
३७.	श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं भगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण	७।१५१, ८।१७७, ९।१९६, १०।२२५
३८.	श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अमन्दोदया दया	८।१६४
३९.	श्रीचैतन्य-शिक्षामृत	४।७९, ५।१०२, ६।१२६, ८।१७४, १२।२७७
४०.	श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाका निमन्त्रण	९।२०८
४१.	श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सव	११।२५६
४२.	श्रीभागवत-पत्रिकाका १६वें वर्षमें पदार्पण	१-२।३७
४३.	श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण	११।२४७
४४.	श्रीमद्भागवतके टीकाकार श्री सुदर्शन-सूरी ६।१२९, वीर राघवाचार्य	७।१४८
४५.	श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि—१-२।१, ३।४१, ४।६५, ५।८९, ६।११३, ७।१३०, ८।१६१, ९।१८५, १०।२०९, ११।२३३, १२।२५७]	
४६.	श्रीरूपानुगत्यकी क्यों आवश्यकता है ?	९।१८८
४७.	श्रील जीवगोस्वामी प्रभु	८।१६८
४८.	श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव	५।१०७
४९.	श्रीश्रीराधाष्टमी व्रत-महोत्सव	४।८८
०५.	श्रीश्रीव्यासपूजा महामहोत्सव	१०।२२४
५१.	सप्तजिह्व श्रीकृष्ण संकीर्तनकी प्रयोजनीयता	३।४४
५२.	संदर्भ-सार [भक्ति-संदर्भ—	१-२।१३, ३।५७, ६।१३१, ११।२४२, १२।२६५]
५३.	साधुसंगसे दूर अवस्थित व्यक्तिका मंगलोपाय	१-२।६
५४.	स्वयं भगवान श्रीकृष्णकी जन्मलीला कहाँ हुई ?	४।८३
५५.	हमारी इष्टगोष्ठी	५।१००
५६.	हरि-भक्ति क्यों सुदुर्लभा है ?	३।१६

※ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ※

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीवन निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास—वामन २८, वार—गर्भोदशायी, शुक्रवार, ३२ आषाढ़, सम्वत् २०२७, १७ जुलाई १९७० | संख्या १-२

जून-जुलाई १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

ब्रह्मादिदेवानां देवकीगर्भस्तुतिः

(श्रीमद्भागवत १०।२।२६-४१)

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितंच सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

ब्रह्मादि देवता श्रीदेवकीगर्भस्थित भगवानकी इस प्रकारसे स्तुति करने लगे—आप सत्यसंकल्प हैं अर्थात् आप जो संकल्प करते हैं उसकी सत्यताको अवश्य ही निभाते हैं। अतएव आप सत्यव्रत हैं। सत्य ही आपको पानेका श्रेष्ठ उपाय होनेके कारण आप सत्यपर हैं। सृष्टि, स्थिति और लय—इन तीनों अवस्थाओंमें समान रूपसे वर्त्तमान रहनेके कारण आप त्रिसत्य हैं। आप पञ्चभूतोंके उत्पत्ति-कारण हैं और पञ्चभूतोंके उत्पन्न होनेके पश्चात् भी आप उनमें अन्तर्यामी रूपसे वर्त्तमान हैं और भूतनाशके समय अर्थात् प्रलयके समय एकमात्र आप ही अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत अर्थात् सुसत्यवचन और सत्य अर्थात् समदर्शन—इन दोनोंके ही प्रवर्त्तक हैं। अतएव हम सत्यात्मक आपके शरणापन्न होते हैं ॥२६॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२७॥

यह समष्टिव्यष्टि देहात्मक जगत आदि वृक्षस्वरूप है, प्रकृति आश्रय है, सुख और दुःख इसके दो फल हैं । सत्व, रजः और तमः—इसके तीन मूल हैं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इसके चार रस हैं । पाँच (ज्ञान) इन्द्रियाँ इसके पाँच ज्ञानके द्वार हैं । शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा (भूख) और पिपासा—इसके छः स्वभाव हैं । त्वचा, रक्त, माँस, मेद, अस्थि (हड्डी), मज्जा और शुक्र—सात इसके त्वचा स्वरूप हैं । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इसकी आठ शाखाएँ हैं । नवद्वार (दोनोंनेत्र, दोनोंकान, दोनों नाक, मुँह, पायु और उपस्थ) इसके नौ छेद हैं । दसों प्राण इसके दस पत्ते हैं और इसमें जीवात्मा एवं परमात्मा नामक दो पक्षी वास कर रहे हैं ॥२७॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

हे भगवन् ! इस संसाररूप आदि वृक्षके आप ही एकमात्र उपादान-कारण हैं, आप ही एकमात्र इसके लयस्थान हैं और आप ही एकमात्र इसके पालक हैं । किन्तु आपकी मायाद्वारा मोहित चित्तवाले व्यक्ति आपको बहुत प्रकारसे दर्शन करते हैं । बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा नहीं करते (अर्थात् सृष्टि आदि कार्यके कर्त्तृत्व-मूलमें विष्णु ही एकमात्र स्वतन्त्र कर्त्ता हैं । ब्रह्मा-रुद्रादिका स्वतन्त्र कर्त्तृत्व न होनेके कारण उन्हें सृष्टि आदि कार्योंका कर्त्ता कहा नहीं जा सकता । अज्ञव्यक्ति विष्णुतत्वको न जानकर ब्रह्मा और शिवको सृष्टि और संहारके स्वतन्त्र कर्त्ता समझते हैं ।) ॥२८॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

ज्ञानैकस्वरूप आप स्थावर-जङ्गमात्मक जीवोंका पालन करनेसे लिए धार्मिक लोगोंके सुखप्रद और दुष्टोंके विनाशक विशुद्धसत्वमय मत्स्यादि सभी रूपोंको पुनः पुनः इस संसारमें प्रकट करते हैं ॥२९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्वधाम्नि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥

हे कमलनयन ! मुख्य विवेकी पुरुष लोग विशुद्ध सत्वगुणाश्रय आपमें समाधियोग द्वारा चित्त निविष्ट करते हैं । उसके द्वारा वे लोग महान् व्यक्तियोंके आदरणीय भवदीय पादपद्मरूपी नौकाका अवलम्बन कर भवसागरको गोवत्स-पदकी तरह अनायास ही पार कर लेते हैं ॥३०॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥३१॥

हे स्वप्रकाश ! आप भक्तवांछाकल्पतरु हैं, आपके चरणाश्रित महाजन लोग इस भयङ्कर सुदुस्तर भवसमुद्र स्वयं उत्तीर्ण होकर आपके पादपद्मरूपी नौकाको (गुरु-परम्परा या श्रौत-पथ द्वारा) इस संसारमें छोड़ गये हैं । क्योंकि वे सब भूतोंके प्रति अत्यन्त प्रीति रखते हैं ॥३१॥

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥

यदि कोई कहे कि भगवत्-पादपद्माश्रय करनेकी क्या आवश्यकता है ? शुष्क ज्ञानके द्वारा ही तो भवसागर उत्तीर्ण हुआ जा सकता है ! इसके उत्तरमें कहा गया है—हे पद्मलोचन ! भक्तोंको छोड़कर दूसरे जो सभी व्यक्ति अपनेको मुक्त अभिमान करते हैं, उन लोगोंकी आपके प्रति प्रीति न होनेके कारण वे मलिन चित्तवाले हैं । वे सभी व्यक्ति अत्यन्त कठिनाईसे मोक्षके निकटस्थ प्रदेशमें अधिरोहण करनेपर भी आपके पादपद्मोंका अनादर करनेके कारण वहाँसे पतित होते हैं ॥३२॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो ॥३३॥

हे माधव ! हे प्रभो ! आपमें प्रीतिसम्बन्धयुक्त परम भागवत लोग कदापि सुपथभ्रष्ट नहीं होते बल्कि वे आपके द्वारा सब प्रकारसे सुरक्षित होकर निःशङ्कचित्तसे विघ्नोत्पादनकारी व्यक्तियोंके पालकोंके मस्तकोंके ऊपर पद प्रदानपूर्वक विचरण करते हैं ॥३३॥

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

हे भगवन् ! आप स्थितिकालमें देहधारियोंके मङ्गल-साधक विशुद्ध सत्वमय वपु प्रकट करते हैं । क्योंकि इस शरीरके द्वारा सभी लोग वेदक्रिया, योग, तपस्या और समाधि-योग द्वारा आपकी पूजा किया करते हैं ॥३४॥

सत्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद् विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान् प्रकामते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

हे विधाता ! यदि आपका यह विशुद्ध सत्वमय शरीर प्रकट न होता, तो अज्ञान और उसकेद्वारा कृत भेद-निवर्त्तक अपरोक्ष ज्ञान सम्भव नहीं होता। गुणप्रकाशके द्वारा आप—गुणसमूह जिनके सम्बन्धमें प्रकाशित होते हैं या जो सभी गुणोंके प्रकाशक हैं, वे जड़ बुद्धि आदिरूप गुणोंके अधिष्ठातृस्वरूप ईश्वर ऐसे अनुमित मात्र होते हैं (साक्षात्कार नहीं होता, किन्तु जो लोग आपके विशुद्ध-सत्वमय विग्रहके उपासक हैं, वे आपका साक्षात्कार करते हैं, यही तात्पर्य है) ॥३५॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मना देवक्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥३६॥

देवतालोग बहुरूपसे प्रकाशमान भगवानको सम्बोधन कर और कह रहे हैं—हे देव ! गुण, जन्म और क्रियाके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं होता। क्योंकि आप अनुमिति (अनुमान) पथावलम्बी साधकोंके मनोवाक्यके अगोचर हैं। आप साक्षीस्वरूप हैं। किन्तु भक्त लोग उपासना अर्थात् सेवाद्वारा आपका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं ॥३६॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

हे भगवन् ! आपके पादपद्मोंमें आविष्टचित्त होकर जो व्यक्ति सभी कार्योंमें आपके परम मङ्गलमय नाम और रूप गुरुमुखसे श्रवण कर ग्रहण करते-करते दूसरों द्वारा स्मरण और चिन्तन कराते हैं, उनका और संसार नहीं रहता ॥३७॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्ट्याङ्कितो त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्याञ्च तवानुकम्पिताम् ॥३८॥

हे हरे ! आपके पादपद्मोंसे उत्पन्न यह पृथ्वी आपके आविर्भाव मात्रसे ही अपने भारसे मुक्त हुई, यही हमारा परम भाग्य है। परन्तु हमारा और भी भाग्य है कि आपके सुशोभन युक्त ध्वज, वज्र, अंकुशादि शुभलक्षणद्वारा पृथिवीको अंकिता और सुरलोकको आपके द्वारा अनुकम्पित देख पायेंगे ॥३८॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं बिना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥३९॥

हे ईश ! असंसारी आपके जन्म लेनेका कारण क्रीड़ामात्र है; इसको छोड़कर हम लोग और कुछ स्थिर नहीं कर पाते (क्योंकि जन्मादिके कर्मफलबाध्य जीवोंकी तरह कोई कारण नहीं है ।) हे नित्यमुक्त ! जीवात्माके भी जो जन्मादि होते हैं, वे आपके अपाश्रिता (आपसे सुदूरवर्त्ती) अविद्या द्वारा ही होते हैं ॥३९॥

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

हे ईश ! पहले आपने मत्स्य, अश्व (हयग्रीव), कूर्म, नृसिंह, वराह, हंस, क्षत्रिय (रामचन्द्र), परशुराम, विप्र (वामन) एवं देवताओंके बीच अवतार ग्रहण कर हम लोगोंका और त्रिभुवनका जिस प्रकारसे पालन किया है, अभी भी उसी प्रकार पृथ्वीका भार हरण करें अर्थात् पृथिवीका भार हरण कर हमारा पालन कीजिए । हे यदूत्तम ! हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४०॥

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षात्भगवान् भवायनः ।
माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

भगवान्‌की स्तुति कर देवता लोग देवकीको कहने लगे—हे माता देवकी ! भाग्य-क्रमसे हमारा परम मङ्गल करनेके लिए साक्षात् परमपुरुष भगवान बलदेवके साथ आपके गर्भमें प्रवेश किये हैं । अतएव मरणोच्छु कंससे आपका कोई भय नहीं है । आपके (नित्य) पुत्र कृष्ण यदुओंके रक्षक होंगे ॥४१॥

॥ इति ब्रह्मादिदेवानां देवकीगर्भस्तुतिः सम्पूर्णम् ॥

॥ इति ब्रह्मादि देवताओं द्वारा कृत देवकीगर्भस्तुतिः सम्पूर्ण ॥

साधुसंगसे दूर अवस्थित व्यक्तिका मंगलोपाय

श्रीचैतन्य मठ श्रीमायापुर

ई० स २२ । १२ । १९२७

आपका एक पत्र * * निकटसे कल मैंने प्राप्त किया है। इसके पूर्व बहुत दिन पहले और एक पत्र प्राप्त किया था, पश्चिम भारत भ्रमणके पूर्व। नाना स्थानोंमें भ्रमण करते रहनेके कारण उस पत्रका उत्तर यथासमय दे न पाया। पश्चिम भारतके विभिन्न स्थानों में उत्सवोंकी बात शायद आपने गौड़ीयमें या भक्तोंके मुखसे जाना होगा। सर्वत्र ही श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका श्रवण कर सज्जन व्यक्तिमात्र ही आनन्दित हुए हैं।

श्रीनवद्वीप धाम भगवद् भक्तोंका परम आदरणीय स्थान है। इस धाममें सर्वत्र ही भगवद् स्मृतिका उदय होता है। उसके लिए विशेष इच्छा होता है कि यहाँ और कुछ दिन वास करूँ। अन्यत्र हरिसेवा करनेके लिए आवश्यकता पड़ने पर कलकत्ता आदि स्थानोंमें जाना पड़ता है। श्रीमन्महाप्रभु परम दयामय हैं; इसलिए उन्होंने कलकत्ताकी तरह स्थानोंमें बहुतसे भक्तोंको रखा है। श्रीगौड़ीय मठमें सर्वदा ही हरिकथा होती है और सभी ही हरिसेवामें प्रमत्त हैं। उनके सङ्गमें मेरा शेष जीवन श्रीपरीक्षित राजाकी तरह भागवत-श्रवणमें व्यतीत हो जाय, यही मेरे लिए परम वरणीय वस्तु है। जहाँ हरिकथाकी चर्चा न हो, वहाँ सभी आत्मीयजनों द्वारा परिवेष्टित होने पर भी या वहाँ वास करनेमें जितनी भी सुविधा क्यों न हो, मेरे अन्तिम समयमें वे सभी स्थानोंकी या ऐसे जनसङ्गकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। भगवानकी अपार कृपासे सर्वत्र मठादियोंमें भगवत्-सेवा प्रवृत्ति देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी परम करुणाकी अनुभूति होती है। कहाँ विषय-रसको उपादेय मानकर जीवन बिता रहा था! उस सङ्गके बदलेमें आज मेरे नाना गन्तव्य स्थानों में श्रीभगवत्-सेवा और भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार जीवनके बाकी दिनोंको बिताने पर हमें हरिविमुख होकर क्लेशमय जीवन व्यतीत करना न होगा।

आप * * * भगवत् सेवापरायण हरिभजनोन्मुख व्यक्तियोंके निकट अधिक हरिकथा सुन नहीं पा रही हैं, इसलिए आप अपने भाग्यकी प्रशंसा नहीं कर रही हैं। किन्तु आपकी नैरन्तर्यमयी हरिसेवा-प्रवृत्तिने आपको दूसरे सङ्गसे दूर रख दी है। सर्वदा 'गौड़ीय' एवं भक्तोंके ग्रन्थादि स्वयं ही पाठ

करेंगे। ऐसा करने पर भक्तोंके मुखसे हरि-कथा सुननेका फल प्राप्त होगा।

यद्यपि इस पृथ्वीमें अप्राकृत राज्यके बहुत भक्तोंसे साक्षात्कार नहीं हो पाता, तथापि श्रीमन्महाप्रभुके समयके भक्तोंके कथोपकथन और लीलाकथा ग्रन्थ और शब्द-रूपसे नित्य विराजमान है। अतएव जागतिक क्लेशकी हमें अनुभूति बहुत कम होती है। हम यदि अप्राकृत राज्यकी कथा आलोचना करते हुए यहाँ वास करें, तो ऐसी स्मृति हमें जागतिक कष्टसे दूर रखती है।

जहाँ भी रहें, भगवत्-कथा आपको छोड़ कहीं न जायगी। सांसारिक सभी बातोंमें ही भगवानकी स्मृति और भगवद् भक्ति की बात जान सकेंगे। भगवानकी इच्छा होने पर पुनः यहाँ लौट आने का सुयोग उपस्थित होगा। भगवान भक्तोंको जिस अवस्थामें रखकर सुखी होते हैं, उसी अवस्थामें ही वास कर अपने दुःख-क्लेश आदियोंको भूल जाना उचित है।

भगवानकी कथा, श्रीमन्महाप्रभुकी कथा, भक्तोंका अलौकिक चरित्र साधारण सांसारिक लोग समझ नहीं सकते। हृदयमें भगवान की सेवा-प्रवृत्ति उन्मेषित (जागरित) होने पर सभी अवस्थाओंमें ही हरिस्मरण होता रहता है।

आप पारत्रिक (पारमार्थिक) मंगलके लिए चेष्टा कर रही हैं, अतएव ग्रन्थ रूपसे भगवान अपनी सब कथाएँ आपके हृदयमें प्रकाश कर रहे हैं। श्रीचैतन्य भागवतमें कहा गया है—

'जेत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।
निश्चय जानिह सेइ परानन्द दुःख॥'

हमारी परीक्षाके लिए सर्वदा ही भगवान जगतकी आड़में अवस्थान कर रहे हैं। प्रत्येक वस्तुके दूसरे तरफ उनका आविर्भाव लक्ष्य करनेसे ही हमारी तात्कालिक प्रतीति कम होती है।

'अद्यापि सेइ लीला करे गौरराय।
कोन कोन भाग्यवान देखिबारे पाय॥'

हमारा ऐसा भाग्य कब होगा, जब हम सर्वत्र श्रीगौरसुन्दरका अनुगमन करते हुए उनसे अनुसरणमें नियुक्त होकर भक्तिपथके यात्री होंगे।

भगवानकी परीक्षाका स्थान यह पृथ्वी या संसार है। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए हरिजनोंका (भक्तोंका) कीर्त्तन सुनना होगा। उस कीर्त्तनको ग्रन्थद्वारा आप सुन रही हैं। अतएव आप अपनेको अभावग्रस्त समझना अनुचित है।

हिरण्यकशिपुने किसी समय इस भूमण्डलमें भगवान ही नहीं हैं, ऐसा स्थिर किया था और प्रह्लादको नाना प्रकारकी विरुद्ध युक्तियाँ दिखाईं थीं और उनको मारनेके लिए चेष्टाएँ की थीं। किन्तु श्रीनृसिंहदेवने

स्तम्भके भीतरसे प्रकट होकर हिरण्यकशिपु एवं सारे जगतका मंगल किया था। भगवद्-भक्त सर्वत्र ही भगवद्दर्शन करते हैं, और भगवद् विद्वेषी सर्वत्र ही भगवानका अस्तित्व तक उपलब्धि नहीं कर पाते।

मध्यवर्त्ती स्थानमें रहकर हम लोग कभी हरिसेवामें रुचि दिखलाते हैं तो कभी दूसरे ही क्षण विषय भोगोंमें व्यस्त हो पड़ते हैं। हरिसेवामें प्रवृत्त होनेकी इच्छा होने पर ही हमारी विषयभोग-वासना निवृत्त हो जाती है। विषयमें तात्कालिक सुख और दुःख वर्त्तमान है; हरिसेवामें नित्या भक्ति भगवानको आनन्द प्रदान करती है। हम लोग उस आनन्दके उद्देश्यसे सर्वदा सेवापर रह सकते हैं।

इस विस्तृत पत्र पाठ कर आपको कुछ तात्कालिक उपकार होगा कि न होगा, नहीं जानता। मैं भाषाज्ञानमें नितान्त अप्रवीण हूँ, सभीको सब बातें कहकर समझानेका सामर्थ्य न होने के कारण कई समय चुपचाप बैठा रहता हूँ।

इति नित्याशीर्वादक
श्रीसिद्धान्त सरस्वती

—— (जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर)

श्रीगोविन्द-भजनकी महिमा

काषायान्न च भोजनादिनियमान्नो वा वने वासतो,
व्याख्यानादथ वा मुनिव्रतभराच्चित्तोद्भवः क्षीयते।
किन्तु स्फीतकलिन्दशैलतनयातीरेषु विक्रीडतो,
गोविन्दस्य पदारविन्दभजनारम्भस्य लेशादपि॥

किसी कृष्णभक्तने कहा है—केवल काषाय वस्त्र धारण कर लेनेसे अथवा परिमित सात्त्विक भोजनादिका नियम धारण करनेसे किंवा अकेले ही एकान्त वन में वास करनेसे, और विशिष्ट प्रभावशाली व्याख्यान मात्रसे, अथवा मौनव्रत स्वीकार करनेसे, या सर्वतीर्थयात्रा मात्रसे ही दुर्दान्त वासना वासित कामदेवका क्षय नहीं होता किन्तु स्वच्छ एवं विशाल श्री यमुनाजीके तीरोंपर गोप-गोपियों सहित क्रीड़ापरायण श्रीगोविन्ददेवके चरणारविन्दके भजनारम्भके लेशमात्रसे ही उसका वासनाओं सहित समूल नाश हो जाता है।

(पद्यावली से)

प्रश्नोत्तर

(योग-व्रतादि)

१—योग क्या एक अखण्ड सोपान नहीं है ?

"योग एक ही है, दो नहीं। योग एक सोपानमय मार्गविशेष है। * * * निष्काम कर्मयोग इस सोपानका प्रथम क्रम है। उसमें ज्ञान और वैराग्य संयुक्त होकर द्वितीय क्रम-रूप 'ज्ञानयोग' होता है। उसमें पुनः ईश्वर-चिन्तारूप ध्यान युक्त होकर 'अष्टांग-योग' रूप तृतीय क्रम होता है। उसमें भगवत् प्रीति संयुक्त होने पर 'भक्तियोग' रूप चतुर्थ क्रम होता है। ये सभी क्रम मिलित होकर जो महत्-सोपान होता है, उसी को 'योग' कहा जाता है।"

—गी० र० र० भ० ६।४७

२—कर्म और ज्ञानयोग किस समय गौण फल देनेमें समर्थ होते हैं ?

"कर्म, योग, ज्ञान और तत्तत् पन्थाके अवान्तर प्रकार-समूहका यदि भक्तिका उद्देश्य न हो, तो उनमें किसी प्रकार का भी फल देनेकी शक्ति नहीं है। चरममें कृष्ण भक्तिका उद्देश्य रहनेसे ही वे कदाचित् थोड़ा बहुत गौण-फल प्रदान कर सकते हैं।"

—चै० शि० १।६

३—किन-किन शास्त्रोंमें हठयोग वर्णित है ?

"शाक्त और शैव तन्त्रोंमें एवं इन सभी तन्त्रोंसे हठयोगदीपिका, योगचिन्तामणि आदि जो सभी ग्रन्थ रचित हुए हैं, उन सबमें ही हठयोग वर्णित है।"

—प्रे० प्र० ३ रा प्र०

४—राजयोग और हठयोगमें विशेष भेद क्या है ?

"दार्शनिक और पौराणिक पण्डित लोग जिस योगका अभ्यास करते हैं, उसका नाम 'राजयोग' है। तान्त्रिक पण्डितोंने जिस योग की व्यवस्था की है, वह 'हठयोग' है।"

—प्रे० प्र० ३ रा प्र०

५—योगमार्गमें भय और भक्तिमार्ग अभय क्यों है ?

"यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान,धारणा और समाधि—ये प्रक्रियाएँ अष्टांग योगके अन्तर्गत हैं। इसका अभ्यास करने पर आत्मा शान्ति प्राप्त कर सकती है, किन्तु इन सभी प्रक्रियाओं द्वारा किसी-किसी समय साधक काम और लोभके वशीभूत होकर

चरम फल शान्ति न प्राप्त कर अवान्तर फल विभूति आदि भोग करते करते पतित होता है। किन्तु कृष्णसेवामें किसी अवान्तर फलकी आंशका न रहनेके कारण कृष्णसेवक शान्ति अवश्य ही प्राप्त करता है।"

—प्रे० प्र० २ य प्र०

६—हठयोगमें विपत्ति कौनसे स्थानमें होती है ?

"ऐसा हठयोग साधना करने पर मनुष्य बहुतसे आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। उसके फल-दर्शनमें विश्वास किया जा सकता है। ※ ※ ※ मुद्रा-साधनमें इतनी प्रकारकी शक्तिका उदय होता है कि साधक और अग्रसर नहीं हो सकता।"

—प्रे० प्र० ३ रा प्र०

७—जीवनसे वैकुण्ठराग (भगवद् प्रेम) की चेष्टाको अलग करने पर साधक की क्या दशा होती है ?

"ध्यान, प्रत्याहार, धारणा आदि चिन्ता और कार्य सभी रागोदय फलके उद्देश्यसे उपदिष्ट होनेपर भी एवं बहुतसे लोगों द्वारा साधित होनेपर भी, उनमें यथेष्ट या पूर्णरूप से रागकी आलोचना नहीं की गई है। इसी लिए योगी लोग प्रायः ही विभूतिप्रिय होकर चरममें राग या प्रेम प्राप्त नहीं करते। दूसरी ओर वैष्णव-साधन ही उत्कृष्ट है। साधन मात्र ही कर्म-विशेष है। मनुष्य जीवनमें जो सभी कर्म आवश्यक हैं, उनमें रागका कार्य हो एवं परमार्थके लिए किये सभी कार्योंमें केवल चिन्ता और परिश्रम हो, जो ऐसा सोचते हैं, वे क्या वैकुण्ठ-रागको शीघ्र उदय कराने में समर्थ हो सकते हैं ? जीवनसे वैकुण्ठ रागकी सभी चेष्टाओंको पृथक् रखने पर साधकको एक ओर विषय-राग खींचेगा और दूसरी ओर वैकुण्ठ-चिन्ताको लेकर रहना होगा।"

—प्रे० प्र० ३ रा प्र०

८—राजयोगके अङ्ग क्या क्या हैं ?

"समाधि ही राजयोगका मूल-अङ्ग है। समाधि प्राप्त होनेके लिए पहले यम, पश्चात् नियम, फिर आसन, उसके पश्चात् प्राणायाम एवं प्रत्याहार, इनके भी पीछे ध्यान और धारणा—इन अङ्गोंकी साधना करनी पड़ती है।'

—प्रे० प्र० ५ म प्र०

९—राजयोगमें समाधि-अवस्था कैसी है ?

"राजयोगमें समाधि-अवस्थामें प्रकृतिसे अतीत तत्त्वकी उपलब्धि होती है, उस अवस्थामें विशुद्ध प्रेमका आस्वादन है। वह विषय वाक्य द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।"

—प्रे० प्र० ५ म प्र०

१०—तापस लोगोंकी प्रक्रिया कैसी होती है ? कितने प्रकारका योग प्रचलित है ?

"तापस लोग बहुत कष्ट कर कर्म-ग्रन्थि को शिथिल करना चाहते हैं। वैदिक पञ्चाग्नि विद्या, निदिध्यासन और वैदिक योगादि—ये ही तापस लोगोंकी प्रक्रियाएँ हैं । अष्टांग-योग, षडङ्गयोग, दत्तात्रेयी योग और गोर-क्षणार्थी योग आदि अनेक प्रकारके योग बतलाये गये हैं। उनमें से तन्त्रोक्त हठयोग और पातञ्जलि द्वारा बतलाये राजयोगका जगतमें अधिक आदर देखा जाता है।"

—चै० शि० ८, उपसंहार

११—योग और भक्तिमार्गमें प्रभेद क्या है ?

"योग और भक्तिमार्गका विशेष भेद यही है कि योगमार्गमें कषाय अर्थात् आत्मा की उपाधि निवृत्तिपूर्वक समाधिकालमें आत्माके स्वधर्म अर्थात् प्रेमका उद्दीपन कराना ही लक्ष्य है। उसमें आशंका यही है कि उपाधि-निवृत्तिकी चेष्टा करते करते बहुत समय जाता है और स्थल-विशेषमें चरम फल होनेके पहले ही कोई न कोई क्षुद्र फलमें आबद्ध होकर साधक भ्रष्ट हो जाता है। दूसरी ओर भक्तियोग या भक्तिमार्ग में प्रेमका ही साक्षात् अनुशीलन है। भक्ति प्रेमतत्त्वका अनुशीलन मात्र है। जहाँ सभी कार्य ही चरम फलके अनुशीलन हो, वहाँ अवान्तर क्षुद्र फल की आशंका नहीं है। साधन ही फल और फल हो साधन है।"

—प्रे० प्र० २ य प्र०

१२—योग-विभूति प्राप्त करने पर फल क्या होता है ?

"योगमार्गमें जिस भौतिक जगतके ऊपर आधिपत्य मिलता है, वह भी औपाधिक फलमात्र है। उसमें चरम फलकी सार्थकता दूर रहें, कभी कभी बाधकता भी देखी जाती है। योगमार्ग के पद-पद पर बाधाएँ होती हैं। पहले यम-नियमके साधनकालमें धार्मिकता रूप फल उदित होता है; उसमें और उसके क्षुद्र फलमें अवस्थित होकर बहुतसे व्यक्ति धार्मिकके रूपसे परिचित होते हैं और प्रेमरूप फल-साधनमें प्रवृत्त नहीं होते।"

—प्रे० प्र० ३ रा प्र०

१३—कब इन्द्रिय-चेष्टा रुक जाती है ?

"परतत्त्वमें प्रेमकी आलोचना ही भक्ति-मार्ग है। उसमें अनुराग जितना ही गाढ़ा हो इन्द्रिय-चेष्टा स्वभावतः ही उतने ही परिमाण में कम हो जाती है।"

—प्रे० प्र० २ रा प्र०

१४—व्रतोपवासादिका क्या तात्पर्य है ?

"प्रातःस्नान, परिक्रमा, साष्टांग प्रणाम आदि व्यायाम सम्बन्धी शारीरिक व्रत हैं। किसी-किसी धातुका प्रकोप होने पर शारी-रिक अस्वच्छन्दता उपस्थित होती है। उसका निवारण करनेके लिए दर्श, पोर्णमासी,

सोमवार आदि व्रतोंकी व्यवस्था है। उन उन निर्दिष्ट दिवसोंमें आहार-व्यवहारका परिवर्त्तन और उपवास आदि द्वारा इन्द्रिय-संयम पूर्वक ईश्वरचिन्ता करना ही श्रेयः माना गया है।"

—चै० शि० २।२

१५—मासव्रत का मूल उद्देश्य क्या है ?

"चौबीस एकादशी औप जन्माष्टमी आदि छः जयन्तीव्रत ही मासव्रत हैं। केवल परमार्थ चेष्टा ही इन सभी व्रतोंका मूल उद्देश्य है।"

—चै० शि० २।२

१६—वैराग्य उत्पादनका क्या क्रम है ?

"चातुर्मास्य, दर्श, पौर्णमासी आदि शारीरिक व्रत पालन करते-करते वैराग्यका अभ्यास होता है। पहले शयन-भोजनादिके सम्बन्धमें सुखाभिलाष क्रमशः त्याग करते हुए अन्तमें सुखाभिलाष छोड़कर केवल जीवन धारणामात्र विषय स्वीकार कर अभ्यास पूर्ण होनेपर वैराग्य स्वाभाविक हो जाता है।"

—चै० शि० २।२

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

नामरसिक भक्तकी लालसा

स्वर्गार्थीया व्यवसितिरसौ दीनयत्येव लोकान्,
मोक्षापेक्षा जनयति जनं केवल क्लेशभाजनम्।
योगाभ्यासः परमविरसस्तादृशैः किं प्रयासैः,
सर्वं त्यक्त्वा मम तु रसना कृष्ण कृष्णेति रौतु ॥

नामरसिक किसी भक्तशिरोमणिका कहना है—स्वर्ग पानेके साधनोंका जो अनुष्ठान है, वह जीवोंको परम दीन बना देता है। मोक्ष की कामना भी भक्ति रसास्वाद रहित होनेके कारण मोक्षापेक्षी जनको केवल क्लेशभागी बना देती है, एवं योगाभ्यास भी परम विरस है। अतएव ऐसे प्रयासोंकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी जिह्वा तो सब कुछ त्यागकर केवल प्रेमपूर्वक हा कृष्ण ! हाकृष्ण ! ऐसी पुकारती रहे।

(पद्यावली से)

सन्दर्भ-सार

(श्रीभक्तिसन्दर्भ–८)

तत् साधुवर्यादिश वर्त्मशं नः
संराधितो भगवान् येन पुंसाम् ।
हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते
ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥
(भा० ३।५।४)

वास्तव मंगलका उदय किस प्रकार होगा, यह विषय विदुरजी एवं मैत्रेयजीके संवादमें बतलाया गया है । विदुरजी पूछते हैं—"हे मैत्रेय ! जिस प्रकार आराधना करने पर भगवान भक्तिपूत हृदयमें अवस्थित होकर सनातन अनादि वेदज्ञान प्रदान करते हैं, उस मंगलमय आराधनाकी बात मुझे बतलाइए ।" अर्थात् भगवत्-ज्ञान प्राप्त करनेपर ही जीवका यथार्थ मंगल होता है ।

पानेन ते देव कथा सुधायाः
प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं
यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥
तथापरे चात्मसमाधियोग-
बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति
तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥
(भा० ३।५।४५-४६)

ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुतिद्वारा ऊपर कहे गये विषयका उत्तर प्राप्त होता है—हे देव ! तुम्हारी कथारूप अमृतका पान कर भक्तिवृद्धि होनेके कारण जिनका चित्त शुद्ध हो गया है, ऐसे व्यक्ति ब्रह्मसायुज्यसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ परम वैराग्यमय उन्नत ज्ञान प्राप्त करते हैं । वे भक्तिके प्रभावसे भगवन्माधुर्यका आस्वादन प्राप्त कर मायातीत वैकुण्ठ लोकको प्राप्त करते हैं । भक्तोंको छोड़कर दूसरे सभी पण्डिताभिमानी व्यक्ति मनकी स्थिरता रूप आत्मसमाधियोगद्वारा बलवती मायाको जय कर तुम्हारी ज्योति या अंशरूप परमात्मामें प्रविष्ट होते हैं । अतएव भक्तिमार्ग में ही श्रम सार्थक है । ज्ञानयोगादि श्रममय साधनोंमें बहुत क्लेश हैं । जो लोग ज्ञानमार्गी हैं, उन लोगोंके साध्य-साधनकी अवरता या हेयता दूसरे श्लोकमें कहा गया है—

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो
यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
बभूवियेहाजितकीर्त्तिमालां
पदे-पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥
(भा० ३।८।१)

मैत्रेयजी कहते हैं—अहो ! पुरुवंश साधुओं के लिए सेवनीय है । क्योंकि तुम्हारे तरह लोकपाल एवं भगवज्ज्ञान प्रधान भागवत उसी वंशमें जन्मग्रहण किये हैं । तुमसे अजित (भगवान) की सभी कीर्त्तियाँ प्रति क्षण-क्षण नित्य नूतन हो रही हैं । अतएव हरिकथा कीर्त्तनके उपलक्ष्यमें की गई भक्ति ही परम श्रेयस्करी है ।

कपिल-देवहूति संवादमें कहा गया है—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥
(भा० ३।२५।१९)

योगियोंके अभिलषित ब्रह्मप्राप्तिके लिए अखिलात्मा भगवानके प्रति भक्तियोगके समान और कोई मंगलमय पथ नहीं है ।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥
(भा० ३।२५।४४)

दृढ़ अर्थात् योगकर्मादि आवरणसे रहित शुद्ध भक्तियोगके अवलम्बन पर मुझे समस्त कर्म समर्पण करनेपर जीवोंका चञ्चल मन स्थिर होता है । इस लोकमें इसके द्वारा ही जीवोंका सबसे श्रेष्ठ एवं अधिक मंगल होता है ।

पृथु महाराज-सनत्कुमार संवादमें—

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ॥
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रि
द्वन्द्वं प्लवं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥
(भा० ४।२२।३९-४०)

पृथु महाराजके प्रति सनत्कुमारके उपदेश में भी तत्त्वज्ञान उपदेश कर भक्तिकी श्रेष्ठता कही जा रही है—जिनके पादपद्मस्थित अंगुलियोंकी कान्तिके स्मरणप्रभावसे साधुगण अनायास ही कर्मद्वारा उत्पन्न अहंकारका नाश करनेमें समर्थ होते हैं, निर्विषय-बुद्धि, संयतेन्द्रियवेग यति लोग उस प्रकार अपनी चेष्टा द्वारा वैसा फल प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते । अतएव उन शरण्य वासुदेवका भजन करो । ईश्वर हरि ही प्लव अर्थात् उत्तरण (भव-मुक्ति) के हेतु हैं । जिनमें ऐसा विश्वास नहीं है, ऐसे अभक्त यति लोग महाक्लेश देनेवाले उपायद्वारा इन्द्रियतर्पणात्मक कामादि षड्वर्गद्वारा परिपूर्ण भवसागरको अत्यन्त परिश्रमसे पार होनेकी चेष्टा करने भी उसमें असमर्थ होते हैं । अतएव हे राजन् ! तुम एकमात्र भगवत्-चरणोंको भेला (नौका) रूपसे ग्रहण कर व्यसनरूप दुस्तर समुद्रसे उत्तीर्ण हो जाओ ।

प्राप्यविषय समान होने पर भी तुल्यत्व विचारमें एकका (ज्ञानका) दुर्गमत्व कहा गया है; अतएव दूसरे पथका (भक्तिका) अभिधेयत्व स्वतः ही सिद्ध हो रहा है । यहाँ

भक्तिको छोड़कर दूसरे योगी लोग उत्तीर्ण होनेके इच्छुक होनेपर भी वे उत्तीर्ण हो नहीं सकते ।

सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम् ।
योगं तेनैव पुरुषमभजत् पुरुषर्षभ ॥
भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ।
भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाभवत् ॥
(भा० ४।२३।९-१०)

अतएव जिस ज्ञानका उपदेश दिया गया है, उस ज्ञानकी सफलता सम्पादन करनेकी इच्छामात्र भी भक्तिके अन्तर्गत है—भगवान्, सनत्कुमारने पृथु महाराजको जिस आध्यात्मिक परम-ज्ञानयोगका उपदेश किया था, उस ज्ञानयोगद्वारा उस समय श्रद्धाके साथ भगवद् भजन यत्नपूर्वक करनेपर परब्रह्म भगवानके प्रति उसकी अव्यभिचारिणी भक्ति उदित हो जाती है ।

श्रीरुद्रगीतामें भी कहा गया है—

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयः ॥
तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥
(भा० ४।२४।६९-७०)

श्रीरुद्रजी उपास्य-तत्त्व वर्णन करके प्रचेताओंको कह रहे हैं—हे राजाके पुत्रों ! तुम लोग भगवानमें चित्तवृत्ति समर्पणपूर्वक स्वधर्म अनुष्ठान करते-करते इस स्तोत्रका जप करो । तुम लोगोंका मंगल हो । इसमें कर्ममिश्रा भक्तिकी बात कहकर फिर शुद्धा भक्तिकी बात बतलाया—जिस परमात्मा हरि का सब भूतोंमें अवस्थान है, उन्हें आत्मस्थ जानकर पुनः पुनः उनका नामग्रहण और ध्यान करते.करते पूजा करो ।

इस कथन द्वारा अपने (वर्ण और आश्रम) धर्ममें आग्रहका त्याग, सर्वभूतोंमें समदृष्टिकी बात कही गई है । श्रीहरिको छोड़कर दूसरे दूसरे विषयोंमें मन और वचनका आवेश निषेध किया गया है । 'असकृत्' कहनेसे केवल एकबार नहीं, 'निरन्तर' जानना चाहिए ।

श्रीनारदजीने भी यह बात बिलकुल स्पष्ट कही है—

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥
किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्रसावित्रयाजिकैः ।
कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥
श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ।
बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥
किं वा योगेन सांख्येन न्यायस्वाध्याययोरपि ।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥
श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ।
सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥
(भा० ४।३१।९-१३)

मनुष्योंका वह जन्म, वे सभी कर्म, वह आयु, वह मन और वे वाक्य ही यथार्थ हैं

अर्थात् जन्म, कर्म, आयु, मन और वाक्य तब ही यथार्थ हैं, जब उनके द्वारा विश्वात्मा हरिकी सेवा हो। विशुद्ध मातापितासे जो जन्म होता है, वह 'शौक्र जन्म' है । आचार्य और गायत्रीसे जो द्वितीय जन्म होता है, वह 'सावित्र्य जन्म' है। गुरुदेव और दीक्षा द्वारा जो तृतीय जन्म होता है, वह 'याज्ञिक या दैक्ष्य जन्म' है। ऐसे तीन प्रकारके जन्मोंमें वेदत्रयमें (ऋक, यजुः और साममें) कहे गए कर्मानुष्ठानोंमें देवताओंके समान आयुप्राप्ति, वेदपाठ, तपस्या और शास्त्रव्याख्यामें चातुर्य, नाना शास्त्रोंका अवधारण-सामर्थ्य, निपुणा बुद्धि-प्राप्ति, बल-प्राप्ति, इन्द्रियपटुता, योग, सांख्य, संन्यास और स्वाध्याय—भक्तिको छोड़कर ऐसे अन्यान्य साधनादियोंका क्या फल है, यदि उनके द्वारा हरिसेवा न हो ? अर्थात् ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं। सभी श्रेष्ठ फलोंकी पराकाष्ठा ही आत्मा है। परमार्थकी दृष्टिसे सभी भूतोंके ही श्रीहरि आत्मा हैं। वे जीवोंकी अविद्या दूर कर अपना स्व-स्वरूप अभिव्यक्त करते हैं अर्थात् अपनेको भक्तोंके हाथ सौंपते हैं। वे परमानन्द-स्वरूप होनेके कारण वे सभीके प्रिय हैं। जब श्रीहरिसेवा ही जन्मादिका एकमात्र फल है, तब हरिसेवा विहीन होने पर सभी कर्म निरर्थक हैं।

योग (प्राणायामादि), सांख्य (आत्मज्ञान) एवं व्रतवैराग्यादि श्रेयः प्राप्तिके लिए कल्पित सभी उपायोंका क्या फल है ? हरि ही समस्त भूतोंके आत्मा हैं। वे समस्त श्रेयोंकी अवधि हैं। वे आत्मद हैं अर्थात् वे अविद्याका नाश कर जीवके आवृत स्वरूपको प्रकाश करते हैं। ऐश्वरिक रूप प्रकट करके भी वे जिस प्रकार बलि आदि भक्तोंके निकट अपनेको प्रकाश किये हैं, इसलिए आत्मप्रद हैं। वे परमानन्द स्वरूप होनेके कारण प्रिय हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

भक्तिरहित कर्मोंकी निरर्थकता

यदि मधुमथन ! त्वदंघ्रिसेवां हृदि विदधाति जहाति वा विवेकी ।
तदखिलमपि दुष्कृतं त्रिलोके कृतमकृतं न कृतं कृतं च सर्वम् ॥

श्रीविष्णुपुरीजी कहते हैं—हे मधुसूदन ! कार्याकार्य विचारशील जन अपने हृदयमें निष्काम भावसे यदि आपके चारु चरणारविन्दोंकी सेवा करता है, तो आपकी मानसी सेवाके प्रतापसे तीनों लोकोंमें किये गये भी सम्पूर्ण पाप उसके द्वारा न किये के बराबर हैं और यदि अज्ञानी व्यक्ति आपकी सेवा-पूजाको त्यागकर केवल सकाम एवं निषिद्ध कर्मोंमें ही लगा रहता है, तो उसके द्वारा न किये हुए भी तीनों लोकोंके समस्त पाप उसने कर लिये। अर्थात् भगवद्विमुखताके कारण तीनों लोकोंके पापका फल उसे भोग करना पड़ेगा।

(पद्यावलीसे)

भक्तराज प्रह्लादकी भक्तिसाधना व उपदेश

वर्तमान भौतिकवादी युगमें भागवत-धर्म कथित अध्यात्म विज्ञानके प्रसार और शिक्षण की नितान्त आवश्यकता और उपयोगिता है। जिस आध्यात्म-विज्ञानका चिन्तन, परिशीलन एवं श्रद्धा-निष्ठा पूर्वक निरन्तर अनुशीलन और साधना कर देवताओं, महर्षियों, सन्तों, भक्तों, आचार्यों तथा विवेकशील विद्वानोंने जीवमात्रमें ही परमाराध्यतम परमात्माकी सत्ता प्रत्यक्षीकरण किया है और साथ साथ दूसरोंको भी दर्शन कराया है। परम प्रभु भगवानसे निकटता और सम्बन्ध स्थिर करना भी भागवत-धर्मका यथार्थ तात्पर्य है। इस निर्मल धर्ममें जन-कल्याण, विश्व-बन्धुत्व, एकता तथा पारस्परिक प्रेमकी भावना जागरित कर नियम-पालन, सदाचरण एवं सच्चरित्रताकी शिक्षा दी गई है। कर्म-ज्ञान-भक्ति के तारतम्य तथा परस्पर उत्तरोत्तर श्रेष्ठता दिखलाकर जीवोंको सहज, सुलभ भक्ति-मार्गपर ले जानेका प्रयास किया गया है।

भागवत-धर्म प्रतिपादित अध्यात्म-ज्ञान ही भारतीय संस्कृतिका पोषक तत्त्व है। इसीसे भारतीय संस्कृति प्राणवान् है और उसका अक्षय कोष विश्वके मानवमात्रको आत्म-शांन्ति और आत्मानन्द प्रदान करनेमें तथा उसकी सभी अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेमें समर्थ है।

परन्तु इसके विपरीत जबसे मानव प्रमाद या अज्ञानके वशीभूत हो भौतिक विज्ञानसे सम्बन्ध कर उसके सहयोगी उपकरणोंमें अनुरक्त हुआ है, तबसे उसे अस्थिरता, दुःख, अशान्ति, विपत्तियाँ आदि ही मिली हैं। उसे केवल थोड़ासा कृत्रिम, अस्थाई सुख ही प्राप्त हुआहै।

न्याय-निष्ठ, सदसद् विवेकी, यथार्थ ज्ञानी और मननशील व्यक्ति लोग इस बात को बारम्बार स्वीकार करते हैं। वर्त्तमान समयमें वृद्धसे लेकर बालक तकमें धर्मके प्रति अज्ञान, अनास्था, चरित्रनिर्माणकी उपेक्षा, सद् शिक्षा एवं सद्ज्ञान का उपहास, भगवद्-विस्मृति, समाजका विघटन, वर्ग-संघर्ष, जातिवाद, ऊँच-नीचका भेदभाव आदि भावनाओंका प्रचार है। राजनैतिक विषमताओंको इच्छानुसार धर्म कहकर व्याख्या की जा रही है। इसका कारण भौतिक विज्ञान की परिवृद्धि व उसका व्यापक प्रभाव है। मानव समाज भौतिक विज्ञानके आपात् रमणीय सुखोंके गहन वनमें भटक रहा है। उसे भौतिक पदार्थोंसे अपना कल्याण, विकास

तथा आवश्यकताओंकी पूर्ति दीख रही है। वह वैज्ञानिकोंके आश्चर्यजनक आविष्कार, दैनन्दिन सुख-सुविधाओंकी वस्तुओंके संग्रह, रोग-चिकित्सा, उद्योग आदियोंकी व्यापकतामें अपनेको भूल चुका है। समृद्ध होकर भी अपने को वह भूलकर वैज्ञानिकोंको ही एकमात्र सहारेकी लाठी बनाकर चल रहा है। भौतिक विज्ञान सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी-जल-वायु-आकाशके आध्यामिक रूपको छोड़कर उन्हें भौतिक रूप से दर्शन कर अमृतमय वस्तुओंके स्थानपर धूलि एवं उपल ही प्राप्त कर रहा है।

आजकलके मनुष्योंका कहना है कि अब विज्ञान उनके अस्थिपञ्जरमें समा गया है, उसका सम्बन्ध रक्तसे हो गया है, पद-पदपर उसके साधनोंकी अनिवार्यता है, आधुनिक जीवनमें हम उसीसे संचालित होकर जीवित हैं। इस प्रकारकी बातोंको यदि किसी प्रकार ठीक भी मान ली जाय, तो भी यह सोचना हमारा कर्त्तव्य है कि क्या इसके परिणाम विनाशकारी, खर्चीले, बेकारीवर्धक तो नहीं हैं ? क्या इससे किसीको आत्म-शान्ति, परमानन्द प्राप्त हुआ है ? यदि यह सर्वोपरि है, जीवनमें अनिवार्य है, सुखका भंडार है, तो फिर आत्म-सन्तोष, विश्व-बन्धुत्व, राष्ट्रीयता, सच्चरित्रताका प्रसार क्यों नहीं होता ? विद्रोहात्मक शक्तियाँ क्यों पनप रही हैं ? संघर्ष, अधिकार-लिप्सा, सत्ताका लोभ क्यों बढ़ रहा है ? राजनीति, व्यवसाय, शिक्षा-पद्धति आदि में विकार क्यों आ गया ? सर्वाङ्गीण रूपसे लोकहित क्यों नहीं हो रहा है ? इसे कौन नहीं मानेगा कि जो मस्तिष्क अध्यात्म ज्ञान का अधिष्ठान था, सद् विचारोंका केन्द्र था, वह भौतिक विज्ञानसे आवृत हो गया है ? हृदयका सम्बन्ध उससे छूट गया है। जो हृदय सर्वदा सद्-भावना, दया, क्षमा, श्रद्धा, मैत्री, सद्गुणोंका आकर था, उसे भौतिक साधनों की सुख-लिप्सा तथा आसक्तिने अपने अधीन कर उसके आत्म-तत्त्वको कुण्डित सा कर दिया है। जिससे अब अपने कृत्रिम सुखोंके वशीभूत होकर दूसरोंके अधिकारोंको बिलकुल भूल गया है। वह अपनी उन्नति, अपना वैशिष्ट्य, अपनेको महान् सत्ताधारी,समर्थ सिद्ध करनेमें सभी प्रकारके कृत्योंका सहारा लेकर आसुरी सम्पत्तिका अधिष्ठाता बन गया है। इससे हृदय और मस्तिष्क ऊसर भूमिके समान हो गये हैं। अनुर्बरा भूमिमें कितना ही बीज बोयें, वह जिस प्रकार अङ्कुरित या फलित नहीं होता, उसी प्रकार भौतिकवादसे आत्मविस्मृत मानवमें न सद्ज्ञान और न भागवत धर्मका अङ्कुर ही फलित हो सकता है। उसके पास न विचारनेका, न सुननेका न देखनेका ही समय है। उसके हृदय-मस्तिष्कसे भौतिक विज्ञानके प्रति निष्ठा, आसक्ति अनिवार्यता आदि रूपी झाड़ और काँटोंको सद्ज्ञानकी कृपाणसे नष्ट कर मुहुर्मुहुः सद्गुरु और आचार्योंके उपदेशामृतोंकी अमृतमयी औषधिका सिञ्चन कर सिरसे लेकर एड़ी तक परिवर्तन करना है। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो

भौतिक साधनोंका पूरा कोष प्राप्त करने पर भी वह दरिद्र ही रहेगा एवं सर्वसाधनसम्पन्न भारत सभी बातोंपर परापेक्षी बना रहेगा। अतः बाल्यावस्थासे ही हमें भागवत धर्मकी शिक्षा:दीक्षाके प्रति प्रयत्नवान होना चाहिए। युवावस्था-वृद्धावस्थाकी प्रतीक्षा समुचित नहीं है।

अतएव हम सभी बुद्धिमान व्यक्तियोंको भागवत धर्मके आचार्य भक्तराज प्रह्लादके चरित्र और उपदेशोंका मनन कर उनका पालन करनेका अनुरोध करते हैं। श्रीमद्-भागवतके प्रणेता भगवान् वेदव्यासने महा-भागवत प्रह्लादको भागवत धर्मज्ञाता द्वादश महाजनोंमें स्थान दिया है। अतएव कहा गया है—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

(भा० ६।३।२०)

अर्थात् द्वादश महाजन ये हैं—स्वयम्भू (ब्रह्मा), शम्भु (शिव), कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार), कपिल (देवहूति पुत्र),स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेवजी और यमराज।

प्रह्लाद के सम्बन्धमें बतलाया गया है—

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः॥
दासवत्संनतार्याङ्घ्रि पितृवद्दीनवत्सलः।
भ्रातृवत् सहशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः॥

(भा० ७।४।३१,३२)

प्रह्लादजी ब्राह्मण भक्त, सौम्य स्वभाव-युक्त, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे तथा समस्त प्राणियोंके साथ अपने ही समान समताका व्यवहार करते और सबके एकमात्र प्रिय और सच्चे हितैषी थे। बड़े लोगोंके चरणोंमें सेवक की तरह झुककर रहते थे। दीन-दुखियोंपर पिताके समान स्नेह रखते थे। बराबरीवालों से भाई के समान प्रेम करते और गुरुजनोंके प्रति भगवद् भाव रखते थे। विद्या, धन, सौन्दर्य और कुलीनतासे सम्पन्न होने पर भी घमंड और अभिमानसे शून्य थे। अत्यधिक दुःखोंके आ पड़ने पर भी वे विचलित न होते थे। लोक-परलोकके विषयोंको देख-सुनकर उन्हें निःसार और असत्य जानते थे। इन्द्रियाँ प्राण, शरीर और मन उनके वशमें थे। किसी भी जागतिक वस्तुकी कामना उनके मनमें न थी। वे असुर कुलमें जन्म लेकर भी आसुरी भाव रहित थे। उनकी जीवन-चर्या इस प्रकार व्यतीत होती थी—

न्यस्तक्रीडनको बालो जड़वत्तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥
आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन्।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥

(भा० ७।४।३७,३८)

प्रह्लादजी बचपनसे ही खेल-कूदका परित्याग कर भगवानके ध्यानमें अचेतनवत् हो जाया करते थे। भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रह रूप ग्रहने उनके हृदयको इस प्रकार आकर्षित कर लिया था कि उन्हें जगतकी कुछ भी सुध-बुध ही नहीं रहती। उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि भगवान मुझे गोदमें लिए बैठे हैं और मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं। इसलिए उन्हें सोते, बैठते, खाते, पीते, चलते, फिरते और बातचीत करते समय दूसरी बातोंका बिलकुल ध्यान नहीं रहता।

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्॥
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥
क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ।
अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥

[भा० ७।४।३६,४०,४१]

कभी कभी भगवान् मुझको छोड़कर चले गये, इस भावनामें उनका हृदय इतना डूब जाता कि वे जोर-जोर से रोने लगते। कभी कभी मन ही मन उन्हें अपने सामने पाकर आनन्दकी अधिकतासे ठठाकर हँसने लगते। कभी उनके ध्यानमें मधुर आनन्दका अनुभव करके जोरोंसे गाने लगते। वे कभी उत्सुक होकर बेसुरके चिल्लाने लगते थे। कभी कभी लोकलज्जाका परित्याग करके प्रेममें छककर नाचने भी लगते थे। कभी भगवान्की लीला चिन्तनमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें अपनी याद ही न रहती, भगवानकी लीलाओं का अनुकरण करने लगते। कभी भीतर ही भीतर भगवान्के कोमल संस्पर्शका अनुभव करके आनन्दमें मग्न हो जाते थे और चुपचाप शान्त होकर बैठे रहते। उस समय उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता। आधे खुले नेत्र अविचल प्रेम और आनन्दके आँसूओं से भरे रहते थे। भगवान श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अनन्य भक्तिने उन्हें कृतार्थ कर दिया था।

वे समग्र संसारको भक्तिकी पावन मन्दाकिनीमें अवगाहन कराना चाहते थे। इससे जब भी वे असुर बालकोंके बीच बैठते, तब भगवद् गुण-लीलाओंकी चर्चा करते थे।

एक समय सभी असुर बालकोंको एकत्रित कर परमोपयोगी बातें बतलाना आरम्भ किया और संसारकी गति-विधियोंकी बात समझायी। वे शान्त चित्त होकर निर्भीक कण्ठसे एवं निश्चल मुद्रा धारण कर बालकोंसे ऐसा कहने लगे—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(भा० ७।६।१)

हे प्रियबन्धुओं ! बुद्धिमान मनुष्यका परम कर्त्तव्य है कि वह युवावस्था या वृद्धावस्थाके भरोसे पर न बैठकर बालकपनसे ही भगवान् की प्राप्ति करानेवाले साधनोंका अनुष्ठान करें। क्योंकि यह मनुष्य जन्म बड़ा ही दुर्लभ

है। इससे अविनाशी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। पर इस देहका कब पतन हो जायगा, इस बातका कोई निश्चय नहीं है।

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम्।
यदेष सर्वभूतानां प्रियः आत्मेश्वरः सुहृत्॥

(भा० ७।६।२]

इस मनुष्य जन्ममें श्रीभगवान्‌के चरण-कमलोंकी अनन्य भावसे शरण लेना ही जीव की एकमात्र परम सफलता है। क्योंकि भगवान् ही समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी, सुहृद्, प्रियतम एवं आत्मा हैं।

मनुष्य यदि इन्द्रियोंके सुख-भोगको ही सुख मानता है तो वह तो उसे प्रारब्धानुसार जिस योनिमें जायगा, उसे मिलेंगे ही; उनके लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है। क्योंकि बिना प्रयत्न किये निवारण करने पर भी दुःख आ ही जाता है। अतः सांसारिक सुखोंके उद्देश्य से प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। स्वयं प्राप्त होनेवाली वस्तुओंके लिए श्रम करना आयु और शक्तिको गँवाना मात्र है। जो मनुष्य सांसरिक आपात् रमणीय भोगोंमें उलझ जाते हैं, उन्हें भगवानके पावन चरणा-रविन्दोंकी प्राप्ति नहीं होती, वे भोगोंमें ही पड़े रहते हैं।

अतः जब तक शरीर रोगोंसे ग्रस्त न हो, जब तक यह शरीर मृत्युके मुँहमें न चला जाय, तभी तक बुद्धिमान पुरुषको इस शरीर द्वारा भगवत्प्राप्तिकी साधना कर अपने कल्याणकी चेष्टा कर लेनी चाहिए। मनुष्य की पूरी आयु सौ वर्षकी है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उनकी आधी आयु ऐसा ही बीत जाती है क्योंकि वे रातमें घोर अज्ञानसे ग्रस्त होकर सो जाते हैं। बचपन अविवेक-अज्ञानमें बीत जाता है। कौमार-काल खेल-कूदमें चला जाता है। इस प्रकार बीस वर्ष और बीत जाते हैं। बुढ़ापा आने पर शरीर दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार बीस वर्ष और बीत जाते हैं। बाकी दस वर्ष गृहासक्ति, बड़ी बड़ी कामनाएँ जो कभी पूरी नहीं होतीं, और गृहद्वारकी झंझटों में बीत जाते हैं।

अजितेन्द्रिय मानवमें इतना सामर्थ्य कहाँ है कि वह अपने घर-गृहस्थीकी ममता, आसक्तिको अपने आप काट सके? अर्थकी तृष्णाको जगतमें कौन त्याग कर सकता है, जो सबके लिए अति वांछनीय और प्राणोंसे भी प्यारी है, जिसका चोर, सेवक, व्यापारी प्राणोंकी बाजी लगाकर संग्रह करते हैं।

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः
सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान्।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां
कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः॥

(भा० ७।६।११)

जो अपनी प्रियतमा पत्नीके एकान्तवास, उसकी प्रेमभरी बातों और मीठी सलाह पर

अपनेको न्योछावर कर चुका है, भाई बन्धु और मित्रोंके स्नेह-पाशमें बंध चुका है, और नन्हें-नन्हें बालकोंकी तोतली बोलीपर अपने को लुभा चुका है, वह भला उन्हें कैसे छोड़ सकता है ?

जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके सुखोंको ही अपना सर्वस्व मान बैठा है, जिसकी भोग-वासनाएँ कभी भी तृप्त नहीं होतीं, जो लोभ-वश कर्म-पर-कर्म करता हुआ रेशमके कीड़े की तरह अपनेको और भी कड़े बन्धनमें जकड़ता जा रहा है और जिसके मोहकी कोई सीमा नहीं है, वह उनसे किस प्रकार विरक्त हो सकता है ? और कैसे उनका त्याग कर सकता है ?

कुटुम्बपोषाय वियन् निजायु-
र्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।
सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा
निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥
(भा० ७।६।१४)

वह अपने कुटुम्ब पोषणमें इतना मदमत्त हो जाता है कि वह उनका पालन-पोषण करने के लिए अपना अमूल्य जीवन बिता देता है। उसे यह भी नहीं जान पड़ता कि उसके जीवनका वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। इससे बढ़कर प्रमादकी क्या सीमा होगी ? इसमें सुख मिलना दूर रहा, बल्कि वह जहाँ जहाँ जायगा, वहाँ-वहाँ उसे दैविक, दैहिक और भौतिक ताप ही मिलेंगे, जो हृदयको जलाते रहते हैं। कुटुम्बकी ममताके फेरमें पड़कर वह इतना असावधान हो जाता है कि उसका मन धनकी चिन्तामें ही सदा लवलीन रहता है। वह दूसरेके धन चुरानेके लौकिक-पारलौकिक दोषोंको जानकर भी कामनाओंको वशमें न कर सकनेके कारण इन्द्रिय भोगोंकी लालसामें चोरी कर बैठता है। न्याय-अन्यायपूर्वक धनका संग्रह करता है।

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं
पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ।
य, स्वीयपारक्यविभिन्नभाव-
स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥
(भा० ७।६।१६)

वह अपने कुटुम्बियोंके उदर-भरणमें ऐसा लग जाता है कि कभी भगवद्भजन नहीं करता। वह विद्वान् भले ही क्यों न हो, भगवत्प्राप्ति करना उसके लिए असंभव है क्यों कि वह अपने परायेका भेदपरायण है। उसे भी अज्ञानियोंके समान तमःप्रधान गति प्राप्त होती है। इसलिए हे बालकों ! विषयासक्त असुरोंका सङ्ग त्याग कर अशरणशरण भगवान का शरण ग्रहण करो।

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥
(भा० ७।६।१९)

भगवानको प्रसन्न करनेके लिए कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता

क्योंकि वे सभी प्राणियोंकी आत्मा हैं, सर्वत्र सबकी सत्ताके रूपमें स्वयं सिद्ध वस्तु हैं।

ब्रह्मासे लेकर तिनके तक छोटे बड़े सब प्राणियोंमें, पञ्चभूतोंमें, उनसे बनी वस्तुओंमें, तीनों गुणोंमें तथा गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृतिमें एकमात्र अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त ऐश्वर्य,माधुर्य,और सौन्दर्यकी खान हैं। वे ही दृश्य जगतके रूपमें एवं अन्तर्यामी द्रष्टाके रूपमें हैं। द्रष्टा-द्रष्य, व्यापक-व्याप्यके रूपमें उनका निर्वचन किया जाता है। उनमें एक भी विकल्प नहीं है। वे मायाके द्वारा अपना ऐश्वर्य छिपाये रखे हैं। उसके दूर होने पर उनके दर्शन होते हैं। अतएव तुम लोग आसुरी सम्पत्तिकी आसक्ति त्याग कर अनन्य रूपसे भगवानका भजन करो और समस्त प्राणियोंपर दया करो, प्रेमपूर्वक उनकी भलाई करो, जिससे भगवान प्रसन्न हो जाय।

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः।
धर्मादयः किमगुणेन च कांक्षितेन,
सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः॥
(भा० ७।६।२५)

आदिपुरुष, अनन्त, परात्पर प्रभके प्रसन्न होने पर ऐसी कौनसी वस्तु है जो नहीं मिल जाती ? लोक-परलोकके लिए जिन धर्म, अर्थ आदिकी आवश्यकता है, वे तो गुणोंके परिणामसे बिना प्रयासके स्वयं मिलने वाले हैं। जब हम श्रीभगवानके चरणामृतका सेवन करने और उनके नाम-गुणोंका कीर्त्तन करने में लगे हैं, तब हमें मोक्षकी भी क्या आवश्यकता है ?

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुतदेहिनां स्यात्॥
(भा० ७।६।२७)

यह निर्मल ज्ञान जो मैंने तुम्हें बतलाया है, बड़ाही दुर्लभ है। इसे नर-नारायण ऋषियोंने नारदजीको उपदेश किया था। यह ज्ञान कि संसारासक्तिका त्याग कर भगवानका भजन करना है, यह उनको मिलता है जो व्यक्ति भगवान्के परम प्रेमी और अनन्य, अकिञ्चन भक्तोंके चरणकमलोंकी धूलिसे अपने शरीरका स्नान करा चुके हैं। अन्तमें प्रह्लादजी कहते हैं—

श्रुतमेतन्मयी पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम्।
धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद् देवदर्शनात्॥
(भा० ७।६।२८)

यह विज्ञानसहित ज्ञान ही विशुद्ध भागवत धर्म है। इसे मैंने भगवानका दर्शन करानेवाले देवर्षि नारदजीके मुँहसे पहले-पहल सुना था।

इस प्रकार प्रह्लादजीका चरित्र अनन्त शिक्षाओंसे भरा पड़ा है। इस चरित्र और उपदेशोंको हृदयङ्गम कर मानवमात्रका कर्त्तव्य है कि वह जीवनगत विषमताओंमें रुचि न रखकर भगवानके नाम-कीर्त्तन, गुण-गान, भजनादिमें अपने जीवनका बहुमूल्य समय व्यय कर सत्संग करता रहें।

बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराजका
स्वधामगमन

हम अतिशय दुःखके साथ श्रीभागवत-पत्रिकाके पाठक-पाठिकाओंको यह विरह-संवाद दे रहे हैं कि पिछले २२ अक्तूबर १९७०, कृष्णा-तृतीया तिथि, रविवारके दिन शामके ८ बजे नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके श्रीचरणाश्रित, श्रीभागवत-पत्रिकाके कार्याध्यक्ष, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक विशिष्ट एवं वयोवृद्ध संन्यासी परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराजजी सज्ञानावस्थामें श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं श्रीश्रीगौर-निताइका स्मण करते-करते और कीर्त्तन करते-करते सारस्वत-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायको विरह-सागरमें निमज्जित कर स्वधामको प्रयाण कर गए। आप परम वैष्णव थे। समग्र गौड़ीय सम्प्रदायमें वर्त्तमान कालमें सबसे अधिक १०० वर्षकी आयुवाले वैष्णव थे।

उक्त दिवस सबेरे पूर्ण-स्वस्थ थे। प्रातः काल जलपान करके बड़ी निष्ठासे हरिनाम ग्रहण किया। दोपहरमें नियमित रूपसे महा-प्रसादका सेवन किया। स्वयं चल-फिरकर कुछ लोगोंसे हरिकथाकी चर्चा की। लगभग ३ बजे श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीको निकट बुलाकर कहा—'आज मैं चला जाऊँगा।' सबेरे डाक्टरोंको भी अपने महाप्रयाणकी बात सूचित कर दी थी। शामके लगभग ८ बजे अकस्मात् पासके ब्रह्मचारियोंसे अपनेको लिटा देनेके लिए कहा। लेटते ही गौर-निताइ और राधाकृष्ण शब्दोंका दीर्घ रूपसे उच्चारण करते हुए हम लोगोंको सदाके लिए छोड़कर स्वधामको प्रयाण कर गए।

पिछले ५ जुलाई, गौर (शुक्ला) द्वितीया, रविवार, श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीके तिरोभाव एवं श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीकी रथ-यात्राके दिन, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उनका विरह महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। इस विरह-महोत्सवमें पूज्यपाद श्रीश्री-मद्कृष्णदास बाबाजी महाराज, पूज्यपाद

श्रीश्रीमद्व्रजविहारीदास बाबाजी महाराज, श्रीपाद इन्दुभूषण ब्रह्मचारीजी तथा प्रपूज्य-चरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराजके संन्यासी एवं ब्रह्मचारी शिष्यवर्ग, प्रपूज्यचरण त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराजके श्रीवृन्दावनस्थ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके मठवासी वैष्णवगण, श्रीगौड़ीय संघ, वृन्दावन (सिद्धपीठ, इमलीतला) के वैष्णवगण तथा मथुरा एवं वृन्दावन और व्रजमण्डलके सारस्वत गौड़ीय वैष्णव-धाराके लगभग सभी वैष्णव उपस्थित थे । उक्त विरह-सभामें पूज्यपाद श्रीश्रीमद् व्रजविहारी-दास बाबाजी महाराज, श्रीपाद इन्दुभूषण ब्रह्मचारीजी और त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्-भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने स्वधामगत पूज्यपाद मुनि महाराजजीके भक्तिपूत आदर्श जीवन-चरित्रके विविध पहलुओंपर अपने भावपूर्ण विचार प्रकट करते हुए उनके श्रीचरणोंमें अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं ।

पूज्यपाद स्वामीजीका जन्म बंगालके हुगली जिलाके अन्तर्गत बेगमपुरके समीप खरसराइ नामक ग्राममें विक्रमी सं०१९२९ ई० (बंगला संवत १२७९ ई०) कार्तिक महीनेमें शुक्ला नवमीके जगत् धात्री-पूजाके दिन हुआ था । उनका पिता प्रदत्त नाम श्रीशरद्चन्द्र-दास था । पिता केदारनाथजीका पुत्रकी छः वर्षकी आयुमें ही देहान्त हो गया । अतः बुआके घरपर ही ये लालित-पालित हुए । दुर्दैववशतः १८ वर्षकी उम्रमें उनकी बुआजी का भी देहान्त हो गया । आखिरमें असहाय होकर अपने पैतृक निवासस्थल बेगमपुरमें छोटीसी एक झोंपड़ी डालकर वास करने लगे । ये बड़े ही रूपवान, सहिष्णु, गुणी, मृदुभाषी एवं उदार-प्रकृतिके युवक थे । इन्हीं गुणोंके बलपर थोड़े ही दिनोंमें समाजमें अपना एक उच्च स्थान बना लिया । वस्त्रका एक छोटासा व्यवसाय भी आरम्भ कर दिया । २१ वर्षकी उम्रमें उनका पहला विवाह हुआ । उनकी पत्नी एक पुत्र और एक पुत्रीको छोड़ कर परलोक सिधारीं । बन्धु-बान्धवोंके अनुरोध एवं दबावसे ३८ वर्षकी आयुमें पुनः दूसरा विवाह किया । इन सहधर्मिणीद्वारा इनके श्रीनारायणदास, श्रीगोपालदास, श्री-राधारमणदास, श्रीनिमाइदास आदि चार पुत्र और तीन पुत्री हुईं,जो आज तक वर्त्तमान हैं । एक सफल गृहस्थ होते हुए भी साथ ही साथ इन्होंने सफल पारमार्थिक जीवन भी व्यतीत किया । इनके भक्तिमय गार्हस्थ्य-जीवन तथा त्यागी आश्रम जीवन दोनों ही आदर्श जीवन थे । सर्वप्रथम इन्होंने श्रीयुत गौरगोविन्द विद्याभूषण प्रभु (परवर्त्ती कालमें त्रिदण्डि-स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिविलास गभस्तिनेमि महाराज नामसे प्रसिद्ध) के निकट हरिकथा सुनकर विशुद्ध वैष्णवधर्मके प्रति आकृष्ट हुए तथा उनके निकट सस्त्रीक श्रीहरिनाम ग्रहण किया । इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीपाद नारायणदास-ने श्री पूज्यपाद नेमि महाराजके निकट हरि-नाम ग्रहण किया । पीछेसे श्रीनारायणदासने

पूज्यपाद श्रीश्रीमद् श्रौती महाराजके निकट दीक्षा ग्रहण की। द्वितीय पुत्र श्रीगोपालदासने भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य परमाराध्यतम श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशवगोस्वामी महाराजके निकट श्रीहरिनाम और दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार इनका सारा परिवार ही वैष्णव हो गया।

श्रीशरच्चन्द्र बाबूकी सहायतासेही श्रीगौरगोविन्द विद्याभूषणप्रभुने अपने निवासस्थान ब्राह्मणपाड़ा (माजु) ग्राममें श्रीप्रपन्नाश्रमकी स्थापना की। श्रीशरच्चन्द्रजी एक वस्त्र व्यवसायी होने पर भी वाणिज्य-व्यवसायकी अपेक्षा धर्म प्रचार करना ही मनुष्य जीवनका प्रधान कृत्य जानकर सदैव जगद्गुरु श्रीलसरस्वती ठाकुरके आश्रित प्रपूज्यपाद गौरगोविन्द विद्याभूषण प्रभुके श्रीगौरवाणी प्रचारमें सब प्रकारसे सहायता करते थे। इससे इनके व्यापारमें प्रचुर हानि होती थी। फिर भी इसका वे तनिक भी ख्याल न करते थे। धीरे-धीरे भजन राज्यमें प्रचुर अग्रसर हुए। श्रीविद्याभूषण प्रभुने जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीके (श्रीलप्रभुपादजीके) चरणोंमें अपने प्रिय शिष्य श्रीशरच्चन्द्र बाबूको दक्षिणास्वरूप अर्पित कर दिया।

श्रील प्रभुपादजीके गणोंमें ये स्वामीजी 'नेमि महाराजके सनातन' नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीशरच्चन्द्र बाबूने सन् १९२९ में शास्त्रीय विधिके अनुसार सपत्नीक हरिनाम और दीक्षा ग्रहण किया। इनका दीक्षित नाम श्रीसनातन दासाधिकारी हुआ और बड़ी निष्ठाके साथ गृहस्थ जीवनमें रहते हुए भी भगवद्भजनमें तत्पर हुए। वे अपने हाथोंसे उच्चकोटिके वस्त्रोंका निर्माण कर श्रील प्रभुपादजीके चरण कमलोंमें भेंट करते। श्रील प्रभुपादजीके अप्रकटके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति-आचार्य परमाराध्यतम श्रील भक्तिप्रज्ञान केशवगोस्वामी महाराजको वस्त्रादि प्रदान करते। ये गौड़ीय वेदान्त समितिके एक प्रधान पृष्ठपोषक थे तथा समितिके सभापति-आचार्यके प्रति अगाध श्रद्धासम्पन्न थे। इन्होंने गृहस्थाश्रममें रहकर जिसरूपमें हरि-गुरु-वैष्णवकी सेवा की है वह गौड़ीय वैष्णवोंमें आदर्श-स्थानीय है। हम उनके जीवनकी दो एक घटनाओंका उल्लेख कर उनकी दृढ़-निष्ठा, भक्तिमय जीवन तथा सहिष्णुता आदि गुणोंपर किंचित् प्रकाश डाल रहे हैं।

श्री हरिभक्तिविलास आदि वैष्णव-स्मृतिके अनुसार विष्णु-दीक्षा ग्रहणकी आवश्यकता पर बल देकर कहा गया है कि जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा कांसा सोना बन जाता है, उसी प्रकार मनुष्यमात्रका ही दीक्षाके प्रभावसे द्विजत्व साधित होता है—

यथा कांचनतां याति कास्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

(श्रीहरिभक्तिविलास २य विलास, ७ संख्याधृत तत्वसागर वचन)

श्रील सनातनगोस्वामीपादने दिग्दर्शिनी

नामक टीकामें 'नृणाम्' और 'द्विजत्व' शब्दों के तात्पर्यको बड़ी दृढ़तासे लिपिबद्ध किया है। 'नृणाम्' का अर्थ 'मनुष्यमात्र' लिखा है। 'द्विजत्वं' का अर्थ विप्रता किया है। विप्रताका तात्पर्य ब्राह्मणता बतलाया है, क्षत्रिय और वैश्योंका द्विजत्व नहीं। उन्होंने यह भी लिखा है कि विष्णुदीक्षा ग्रहण करते ही तत्काल द्विजत्व या ब्राह्मणता सिद्ध हो जाती है। श्रील प्रभुपादजीने श्रील सनातन गोस्वामीके मतानुसार इन्हें दीक्षा दी थी। आधुनिक कालमें जाति-गोस्वामी और बाबाजी लोग ब्राह्मणके अतिरिक्त दूसरे वर्णके लोगोंको विष्णुदीक्षा देने पर भी अन्यायपूर्वक उन्हें द्विज-संस्कार नहीं देते। इनका विचार सनातन गोस्वामीके विचारोंसे सर्वथा विपरीत है।

आसुरिक समाजका उपद्रव--

श्रीसनातन प्रभुजी उपनयन-संस्कार प्राप्त कर आदर्श जीवन व्यतीत करने लगे; किन्तु तदानीन्तन समाजके लोग उनका पारलौकिक भक्तिमय जीवन और लौकिक समृद्धमय जीवनको देखकर ईर्ष्या करने लगे। उन लोगोंने इनको तरह-तरहसे सताना आरम्भ कर दिया तथा बलपूर्वक धार्मिक जीवन परित्याग करनेके लिए दबाव डालना आरम्भ किया। यहाँ तक कि माँस, मछली, मदिरा, प्याज, लहसुन आदिका सर्वथा परित्याग करनेवाले तथा पवित्र भक्तिमय जीवन धारण करने वाले श्रीसनातन प्रभुको आसुरिक समाजने अपने समाजसे बहिष्कृत कर दिया। उनका नाई-धोबी-कुआ आदि समस्त बन्द कर दिया। फिर भी श्रीसनातन प्रभुजी दृढ़ताके साथ हरिभजनमें तत्पर रहे। इससे समाजवाले और भी चिढ़ गये। उन लोगोंने श्रीसनातन प्रभुकी तृतीया कन्या विष्णुप्रिया के विवाहके लिए आये हुए बरातियोंके साथ बरको बिना विवाह किये लौटा दिया। बरके लौट जानेसे घरमें एकत्रित बन्धु-बान्धव और स्त्रियाँ बड़ी मर्माहत हुई। परन्तु श्रीपाद सनातन प्रभु वज्रकी तरह दृढ़ रहते हुए तनिक भी विचलित नहीं हुए। इन्होंने विवाहोत्सवके लिए एकत्रित विविध प्रकारकी भोज्य सामग्रियोंको लेकर कलकत्ता गौड़ीय-मठमें श्रील प्रभुपादके चरणोंमें उपस्थित हुए। खाने-पीनेका इतना सामान देखकर सब लोग बड़े ही चकित हो गये और इसका कारण पुनः पुनः श्रीसनातन प्रभुसे पूछने लगे। इस पर श्रीसनातन प्रभुजीने श्रील प्रभुपादके निकट नम्र शब्दोंद्वारा हँसते-हँसते निवेदन किया 'प्रभो! आज मेरी तृतीय कन्याका विवाह था, किन्तु समाजके लोगोंने बलपूर्वक बरातियोंको बरके सहित लौटाकर विवाहको बन्द करवा दिया। अखाद्य-कुखाद्य आदि तामसिक आहार बन्द कर शुद्धभक्तिमय जीवन बिताना ही मेरा अपराध है।'

श्रीसनातन प्रभुकी बात सुनकर श्रील प्रभुपादजी क्रोधसे काँपते हुए दुर्दान्त आसुरिक समाजकी ध्वंस-कामना करते हुए बोले,

"समाज-ध्वंस हो ! समाज-ध्वंस हो !! समाज-ध्वंस हो !!!" आश्चर्यकी बात है कि इन महापुरुषके ऐकान्तिक आशीषाभिसम्पातसे आसुरिक समाजका शीघ्र ही ध्वंस हो गया। समाजकी आसुरिक कठोरता दूर हो गयी। श्रील प्रभुपादकी आशीष एवं पूज्यपाद नेमि महाराजकी कृपासे चार-पाँच दिन पश्चात् ही एक सुन्दर परिचित युवक वरने कुछ बरातियों के साथ उनके घर पर उपस्थित होकर उनकी कन्याका पाणिग्रहण किया। भगवानकी ऐसी कृपा देखकर श्रीसनातन प्रभु और उनका परिवार तथा सज्जन व्यक्ति गद्गद् होकर भगवानकी कृपाकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीसनातन प्रभु गृहस्थीमें रहकर वैष्णवों-की खूब सेवा करते थे। जब कभी वे मठमें पहुँचते, मठवासी ब्रह्मचारी-संन्यासीगण बड़े आनन्दित हो उठते। वे किसीको छाता किसीको जूता, किसीको वस्त्र और किसीको कुछ और वस्तुएँ प्रदान करते। उनमें अभि-मान छू तक नहीं गया था। सबको यथा-योग्य सम्मान देते थे। इनका समस्त धन वैष्णवोंकी सेवाके लिए था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति-आचार्यके प्रति इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। ये वाणिज्य-व्यवसाय के द्वारा जो कुछ उपार्जन करते, उसे एकत्र कर सम्पूर्ण श्रील सभापति-आचार्यके चरणोंमें समर्पण कर आते। इन्होंने श्रील आचार्यदेवके साथ चारोंधाम, सातों पुरियों तथा भारतके समस्त तीर्थोंकी परिक्रमा एवं दर्शन किया था। इनके घरमें श्रीराधा-गिरिधारीजी नियमितरूपसे सेवित और पूजित हो रहे हैं। एकबार ये दो महीने तक सात हजार रुपये लेकर मथुरामें श्रीवेदान्त समितिके शाखामठ के लिए एक खण्ड जमीन खरीदनेके लिए श्रील आचार्यदेवके साथ घूमते रहे। जगह स्थिर होनेपर श्रीसनातन प्रभुजीने सात हजार रुपये लेकर अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवके चरणोंमें अर्पण कर दिया। यह स्थान आजकल श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ नामसे प्रसिद्ध है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके साथ श्रीपाद मुनि महाराजजीका नाम अभिन्न रूपसे स्मरण किया जाता रहेगा।

११ वर्ष पूर्व १९५९ के १७ वीं सितम्बरके दिन श्रीसनातन प्रभुजीने ८९ वर्षकी उम्रमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्-भक्तिप्रज्ञान केशवगोस्वामी महाराजके निकट त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहण किया था। उसी दिन उन्हींके साथ अमेरिका, कनाड़ा, इग्लैण्ड, पश्चिम-जर्मनी, जापान आदि पाश्चात्य एवं पूर्वीय देशोंमें गौड़ीय वैष्णव-धर्म एवं भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेवाले तथा संघपति पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज-जीने भी उक्त आचार्यके निकट उक्त नाम ग्रहण कर संन्यास ग्रहण किया था। पूज्यपाद श्रीमद्मुनि महाराजने संन्यासग्रहण करनेके पश्चात् अधिकांश समय मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ही रहकर भजन किया।

आश्चर्यकी बात है कि परलोकगमनके समय उनकी १०० वर्षकी उम्र होने पर भी तब तक उनका एक भी दाँत न टूटा था। आँखोंमें चश्मेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। शरीर भी इनका नीरोग, सबल और स्वस्थ था। प्रायः प्रतिदिन दो लाखसे तीन लाख हरिनाम ग्रहण करते। उनके सरल मधुर व्यवहारसे सभी मुग्ध थे।

ऐसे भजनपरायण, मधुर भाषी, परोपकारी, दृढ़ निष्ठावाले, वैष्णवके सङ्गसे वञ्चित होनेके कारण श्रीगौड़ीय वैष्णव समाज, विशेषकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वैष्णवगण विरह-सागरमें निमज्जित हो रहे हैं। उनका आदर्शभक्तिमय जीवन हमारे लिए प्रकाश-स्तम्भका कार्य करेगा। वे स्वधामसे सबको प्रचुर कृपा-आशीर्वाद करें कि हम लोग सर्वदा हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें नियुक्त रहें। —जनैक विरहकातर सेवक

वासुगांव में श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा

पिछली अक्षय-तृतीया, २४ वैशाख, ८ मई शुक्रवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ, श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, वासुगाँव (आसाम) में श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी के श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा समितिके नवाचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीके द्वारा बड़े समारोहके साथ सुसम्पन्न हुई है। शास्त्रीय विधि-विधानोंके अनुसार प्रतिष्ठाका समस्त कार्य परम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके पौरोहित्यमें सम्पन्न हुआ है।

अधिवासके दिन विधिपूर्वक मन्दिरके चारों तरफ कदली वृक्ष, आम्र-पल्लव, रंग-बिरंगे वस्त्रों एवं कागजोंसे मन्दिर एवं मन्दिर के सामनेका मण्डप सजाकर महाकीर्तनके बीच कलशोंकी स्थापना की गई। बंगाल एवं आसाम-प्रदेशके अनेकों वैष्णवगण इस भक्ति-समारोहमें सम्मिलित हुए थे। अधिवासके दिन रात्रिमें पूज्यपाद नवाचार्यने श्रीमद्-भागवत-प्रवचनके माध्यमसे श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा का रहस्य एवं माहात्म्य उद्घाटन किया।

दूसरेदिन अक्षय-तृतीयाकी तिथिमें प्रातःकाल मथुरा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे समिति के वाइस प्रेसिडेंट त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके वासुगाँव स्टेशन पर उपस्थित होने पर श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ रक्षक श्रीविश्वरूप ब्रह्मचारी एवं अन्यान्य वैष्णवोंने कीर्त्तन करते-करते अभ्यर्थना की तथा उन्हें मठमें ले गये। लगभग ८ बजे शुभ-मुहूर्त्त में श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाका कार्य प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले मंगलाचरण एवं स्वस्तिवाचनका कार्य हुआ। इसमें पूज्यपाद श्रीश्रीमद् श्रौतीमहाराजने श्रीश्रीमद् वामन महाराज, श्रीश्रीमद् नारायण महाराज, श्रीश्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीकानाइलाल ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन

ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी, श्री-सभापति-दासाधिकारी आदि द्वादश वैष्णवों द्वारा शास्त्र-विधियोंके अनुसार स्वस्तिवाचन कराया । पुनः पूज्यपाद श्रीश्रीमद् श्रौती-महाराजने सामने बैठकर श्रीमद् भक्तिवेदान्त-नारायण महाराजजीको श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाकी विधि आदि बतलाकर उनके ही द्वारा विग्रह-प्रतिष्ठाका कार्य संचालन करवाया ।

सबसे पहले श्रीमन्दिरके सामने सुन्दर मण्डपकी रचना कर उसमें वास्तुपूजा एवं वैष्णव-होम आदि करनेके पश्चात् श्रीश्री-राधाविनोदबिहारीजी तथा श्रीश्रीगौरसुन्दर के श्रीविग्रहोंका तुमुल संकीर्तनके बीच तीर्थ-जलोंके द्वारा महाभिषेक सम्पन्न हुआ । तत्पश्चात् श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके समस्त कार्य सम्पन्न होनेपर श्रीविग्रहोंका अर्चन, भोगराग एवं आरति, पुष्पांजलि आदि सुसम्पन्न हुए । तत्पश्चाद् इस उत्सवमें उपस्थित वैष्णवोंके अतिरिक्त निमन्त्रित अनिमन्त्रित हजारों श्रद्धालुओंको विविध प्रकारके सुस्वादु महा-प्रसादका सेवन कराया गया ।

इस महोत्सवमें परमपूज्यपाद परिव्राजका-चार्य श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, समितिके वर्तमान आचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज,त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्-भक्तिवेदान्त उर्द्ध वमन्थी महाराज, श्रीमुकुन्द-गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीकानाइलाल ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्धनदास ब्रह्मचारी, श्रीश्री-दाम ब्रह्मचारी, श्रीलक्ष्मणदास ब्रह्मचारी, श्रीरमापति दासाधिकारी, श्रीप्रेमानन्द दासा-धिकारी, श्रीखगपति दासाधिकारी तथा आसाम प्रदेशके सैकड़ों गृहस्थ भक्त एकत्रित हुए थे । मठ-रक्षक श्रीविश्वरूप ब्रह्मचारीका इस उत्सवमें वैष्णव सेवाका कार्य बड़ा ही प्रशंसनीय रहा । श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा एवं उत्सव का अधिकांश खर्च वासुगाँव निवासी श्री-पार्वतीबाबूकी सहधर्मिणीने वहन किया । अवशेष खर्च श्रीपाद विश्वरूप ब्रह्मचारीने भिक्षाद्वारा एकत्र किया ।

श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके दिन शामको ७ बजे एक महती-धर्मसभाका आयोजन किया गया । पूज्यपाद वामन महाराजजीके सभापतित्वमें श्रीश्रीमद् नारामण महाराज, श्रीश्रीमद्-उर्द्ध वमन्थी महाराज तथा श्रीरमापति दासा-धिकारीने वर्तमान-धर्मविरोधी विश्वके वातावरणमें शुद्धाभक्ति प्रचार तथा श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा आदिके विभिन्न पहलुओंपर सुन्दर विचार प्रकट किया । विश्वके वर्तमान अशान्तिपूर्ण वातावरणमें शुद्धाभक्ति-प्रचार द्वारा ही विश्वमें शान्ति एवं समृद्धि सम्भव है—इसपर सभी वक्ताओंने जोर दिया । सभाके अन्तमें उपस्थित वैष्णव मण्डली एवं सज्जनोंको धन्यवाद ज्ञापन कर महामन्त्रका कीर्त्तन किया गया ।

—निजस्व संवाददाता

जड़ साहित्य और भगवद् भक्ति

श्रुतियोंमें दो प्रकारकी विद्याओंका उल्लेख है—परा विद्या और अपरा विद्या। ऋक्, साम, यजुः और अथर्व वेद तथा वेदोंके छः विभाग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि सभी ही अपरा विद्या के अन्तर्गत हैं। जिस विद्या द्वारा अधोक्षज और अच्युत भगवानको जाना जाय, वह परा विद्या कहलाती है (मुण्डक० १।५)। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा गया है–"भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः" (गीता १८।५५) अर्थात् भक्ति-द्वारा ही जीव मेरे स्वरूपको विशेष प्रकारसे और तत्त्वतः जान सकते हैं। इसलिये भक्तिको ही पराविद्या कहनी चाहिये। पराविद्या श्रीकृष्णतोषिणी और वैष्णवतोषिणी है। अप्राकृत कविकुल चूड़ामणि श्रील रूपगोस्वामीजी ने पराविद्याके छः लक्षण बतलाये हैं—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥

१—क्लेशघ्नी अर्थात् जीवोंके सारे पाप, पापबीज और अविद्याका नाश हो जाता है।

२—शुभदा अर्थात् जो व्यक्ति पराविद्यारूपिणी भक्तिके द्वारा अलंकृत होते हैं, उनमें समस्त सद्गुण सेवककी तरह सर्वदा ही उनकी सेवा करनेके लिये हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। ३—वह मोक्षलघुताकृत् है अर्थात् योगी और ऋषियों द्वारा वांछित कैवल्य सुख या सायुज्य मुक्तिको भी तुच्छ बना देती है। ४—सुदुर्लभा अर्थात् वह जीवका स्वाभाविक धर्म होने पर भी मायाग्रस्त जीवोंके लिये प्राकृत उपायोंद्वारा सहज ही पायी नहीं जा सकती। ५–सान्द्रानन्दविशेषात्मा अर्थात् पराविद्या या भक्तिके उदय होने पर जीवके हृदयमें इतना आनन्द होता है कि उसके लिये समस्त जड़जगतकी शोभा अत्यन्त हेय, नश्वर और खण्ड प्रतीत होती है अथवा जड़जगतके विपरीत चिन्तामय जगतमें जो निर्विशेष आनन्द है, उसे कोटिगुना करने पर भी भक्ति सुखरूपी समुद्रके विशुद्ध आनन्दकी तुलनामें वह गोस्पदके समान जान पड़ता है। ६—यह पराविद्या या भक्ति श्रीकृष्णाकर्षिणी है। यही पराविद्या का मुख्यतम लक्षण है। इस पराविद्यामें इतना आकर्षण है कि इसके द्वारा समस्तत्रिभुवनको आकर्षित करनेवाले श्रीकृष्ण भी आकृष्ट हो जाते हैं।

सर्वशक्तिमान भगवानमें विश्वासरहित नास्तिक व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा प्राप्त ज्ञानके आधारपर ऐसा विचार करते हैं कि भगवानका वासस्थान निर्विशेष है अर्थात् वहाँ कोई विलासादि नहीं हैं एवं

समस्त प्रकारके भोगविलास इस जड़जगतके भोगियोंके लिये ही बनाये गये हैं। इसलिये वे लोग अपने भोगोंकी चरितार्थता सम्पादन करनेके लिये भगवानको निर्विशेष, निराकार, निर्गुण, निरव्यय आदि कल्पना कर उनके अप्राकृत हाथ, पैर, मुख, आँख, कान, आदि अंग-प्रत्यगको छेदन करनेका आसुरिक कुप्रयास करते हैं। कभी-कभी वे लोग श्रीकृष्ण को अपने अधीनस्थ एक भोगविलासकी सामग्री समझकर उनकी लीलाओंको अपने इन्द्रिय-तर्पणके लिऐ ईंधन मात्र समझते हैं। इस प्रकारके साहित्यसे परिपूर्ण प्राकृत कवियों की कविता इन्द्रिय-तर्पणके उपयुक्त होनेपर भी यह नितान्त भक्तिविरोधी है। इसके द्वारा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता नहीं होती। अधोक्षज भगवानका नित्य अप्राकृत स्वरूप वर्तमान है जो मनुष्योंके जड़ीय मनद्वारा कल्पित एक साँचा मात्र नहीं है। जब भगवान कृपा पूर्वक सेवोन्मुख चित्तमें अपना दिव्यस्वरूप प्रकाशित करते हैं, उस समय ही जीव अपनी चिन्मय इन्द्रियों द्वारा उनकी सेवा कर सकते हैं। किन्तु दुःखका विषय यह है कि संकीर्ण बुद्धि वाले पण्डिताभिमानी व्यक्ति अन्यायपूर्वक भगवानको निर्विशेष कल्पना कर अथवा उन्हें अपने समान एक साधारण मर्त्यशील व्यक्ति-विशेष समझकर उनके सम्बन्धमें जो कविताएँ या रचनाएँ सृष्टि करते हैं, वे अपराविद्याके अन्तर्गत हैं।

अप्राकृतराज्य चिद्विलासमय है। वहाँ का समस्त वातावरण केवल कृष्णकी प्रसन्नता के लिये ही है। वहाँकी भूमि चिन्तामणिमयी है, असंख्य अप्राकृत कवियोंके कवित्वकी जननी है। वह कविता कृष्ण और कृष्णभक्तों के लिये जीवनदायिनी है। वहाँ सर्वत्र ही कवित्वका प्रकाश है जो अजस्रधारासे नित्य काल ही प्रवाहित होकर श्रीकृष्णकी प्रीतिको नवनवायमानरूपसे बढ़ा रहा है। वहाँ की कथा (परस्पर वार्तालाप आदि) ही गान है, चलना-फिरना ही नृत्य है, जल ही अमृत है, वंशी प्रिय सखी है, परमपुरुष ही पुरुष हैं, लक्ष्मियाँ ही स्त्रियाँ हैं। वहाँके पशु पक्षी आदि कृष्ण-गुणगानमें मदमत्त हैं, वृक्ष सभी कल्पतरु हैं। अर्थात् वहाँकी समस्त वस्तुएँ ही चेतन हैं। उस असीम, अनन्त, अफुरन्त एवं अद्वितीय साहित्य और कवित्वका किंचित् विकृत आभासमात्रसे ही इस जड़ जगतके प्राकृत व्यक्ति विमोहित हैं। किन्तु इस अप्राकृत साहित्यमें चेतनता नहीं है—कृष्णका प्रीतिविधान नहीं है। इस प्राकृत कवित्वमें मृत्यु, जरा, शोक, अवता, हेयता ही वर्तमान है। यह कवित्व केवल "अप्राणस्यैव देहस्य मण्नम् लोकरंजनम्" है अर्थात् यह केवल प्राकृत व्यक्तियोंके कानोंको काल्पनिक आनन्द-प्रदान करते हैं। किन्तु ये कृष्ण-कर्णामृत नहीं हो सकते। अतः किसी कविने कहा है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रसवेद्याः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः कायैः जरामरणजन्मभीः॥

अर्थात् जो व्यक्ति सुकृतिमान हैं, अप्राकृत रसके वेत्ता हैं, जो कविकुलके चूड़ामणि हैं, ऐसे जयदेव, बिल्वमंगल आदि महाकवि जययुक्त हों। उनके काव्यमें, उनके यशमें, उनके अप्राकृत शरीरमें जन्म, जरा, भय, मृत्यु आदि हेय धर्म या नश्वरशीलता नहीं है। प्राकृत कविलोग श्रील कृष्णदास-कविराज गोस्वामीकी भाषामें "ग्राम्यकवि" मात्र हैं। ये सभी ग्राम्यकवि कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा आदिके लिये अधोक्षज वस्तु भगवानकी नामरूपगुणलीला आदिका वर्णन कर अपनी धृष्टता दिखलाते हैं। किन्तु उनके प्राकृत कवित्वमें अप्राकृत चिद्विलासमय भगवानके चिन्मय नामरूपगुण आदि प्रकाशित नहीं हो सकते। अतएव कहा गया है—"अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर"।

अप्राकृत कविकुल मुकुटमणि गौर-पार्षद श्रील भक्तिविनोदठाकुर भी कहते हैं—

"जड़काव्यरसो न हि काव्यरसः कलि-पावन-गौर रसो हि रसः।"

बंगदेशीय किसी कविने श्रीमन्महाप्रभुका चरित्र नाटकाकारमें रचना कर श्रीमन्महा प्रभुको सुनाने के लिये व्यस्तता दिखलायी। किन्तु महाप्रभुके द्वितीयस्वरूप और परम अंतरंग श्रील स्वरूपदामोदर गोस्वामीने इसका अनुमोदन न किया। क्योंकि श्रीमन्म-हाप्रभु ग्राम्यकवियोंके रसाभास दोषपरिपूर्ण और भक्तिसिद्धान्त विरोधी रचनाओंसे प्रसन्न नहीं होते थे। श्रीबिल्वमंगल, जयदेव, चण्डी-दास आदि अप्राकृत कवियोंके काव्यरसका नित्यनिरंतर आस्वादन करते थे। भगवाना-चार्य नामक एक वैष्णवके अनुरोधसे श्रील स्वरूपदामोदरजीने उस ग्राम्यकविकी रचना सुनी। उस रचनामें सिद्धान्तविरोध और भक्तिराहित्य देखकर उन्होंने उस कविकी प्रचुर भर्त्सना की और उसकी अतत्त्वज्ञता पर क्षोभ प्रकट किया। उनके वचन सुनकर वह कवि लज्जा, भय और विस्मयसे परिपूर्ण होकर कुछ उत्तर न दे सका। उसके प्रति दयापर-वश होकर श्रील स्वरूपदामोदर गोस्वामीने कहा—

जाह, भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने।
एकान्त आश्रय कर चैतन्यचरणे॥
चैतन्येर भक्तगणेर नित्य कर संग।
तबे त जानिबे सिद्धान्त-समुद्र-तरंग।
तबे पण्डित्य तोमार हइबे सफल।
कृष्णेर स्वरूपलीला वर्णिबे निर्मल॥

(चै० च० अन्त्य, पंचम परिच्छेद) ये सभी ग्राम्यकवि अपनेको जितना ही भक्त क्यों न समझें, जितना ही सरस्वतीके कृपाप्राप्त क्यों न समझें, वे लोग अप्राकृत शुद्धा सरस्वती या भक्ति सिद्धान्त वाणीकी सेवासे कोसों दूर हैं। जिन महापुरुषोंने भक्तिदेवीकी सेवा के लिये अपना जीवन समर्पण कर दिया है, वे लोग कदापि असती स्त्रीकी तरह भगवान के गुणानुवादको छोड़कर इतर अनर्थकारी

कथाका कीर्त्तन नहीं करते। अप्राकृत वाणी व्यभिचारिणी नहीं है, वेश्याएँ अव्यभिचारिणी, अहैतुकी, अप्रतिहता सेवामयी पराविद्याको उनकी तरह परपुरुषोंका मनोरंजन या सेवा करते न देखकर 'संकीर्ण,' 'साम्प्रदायिक' 'अर्वाचीन' आदि क्यों न कहा करें—किन्तु निर्मत्सरा कृष्णसेवैकपरायण वाणी इन सभी व्यभिचारिणी कोलाहलको निरर्थक प्रलाप-मात्र जानकर उनका दूर ही से परित्याग कर अपने पति श्रीकृष्णकी सेवामें नियुक्त रहती हैं।

श्री चैतन्य भागवतमें सरस्वतीके वरपुत्र दिग्विजयी पण्डितका चरित्र वर्णित है। ये दिग्विजयी पण्डित अपनी अद्भुत कवित्व शक्तिके द्वारा देशके सभी गण्यमान्य विद्वानों को पराजित कर श्रीमन्महाप्रभुको परास्त करने के लिये नवद्वीपमें उपस्थित हुए। किन्तु श्री न्महाप्रभुके निकट उनके कवित्वकी प्रभा क्षीण हो गयी। रात्रिमें स्वप्नमें सरस्वतीदेवीने उन्हें दर्शन देकर कहा—

आमि जार पादपद्मे निरंतर दासी।
सम्मुख हइते आपनारे लज्जा बासि॥
आमि से बुलिये विप्र तोमार जिह्वाय।
ताँहार सम्मुखे शक्ति ना बसे आमाय॥
चै० भा० आदि १३ वाँ परि०

अर्थात् शुद्धा सरस्वती या परावाणी नित्यकृष्णसेविका हैं। उन परावाणीकी छाया शक्ति स्वरूपिणी अपराविद्या या प्राकृत सरस्वती स्वरूपसे कृष्णसेविका होने पर भी जीवमें 'मैं-मेरी' दुर्बुद्धि उदय कराकर उन्हें विमोहित करने के कारण कृष्णके सम्मुख आनेसे विलज्जित होती हैं। अतएव वे प्राकृत जीवका विमोहन कर उनके निकट अपना पराक्रम दिखलाने पर भी कृष्ण और कृष्ण-भक्तोंके निकट वे पराजिता हैं।

श्रीविश्ववैष्णवराजसभा एक प्राचीनतम परासाहित्य परिषद् है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण इस सभाके अधिपति हैं। आदि कवि ब्रह्मा इसके पहले कवि हैं। वाल्मीकि, व्यास, नारद, शुकदेव, चारोंकुमार, शंभु, देवहूति-नन्दन कपिल, प्रह्लाद, जनक, भीष्म आदि निष्किचन महाभागवत सभ्यगण अनादिकाल से ही इस पारमार्थिक साहित्य-सभाका संरक्षण करते आ रहे हैं। कलियुगके पा ना-वतार कृष्णप्रेमप्रदाता राधाभावकान्तिधारी स्वयं भगवान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके अनुचर श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथभट्ट, श्रीगोपालभट्ट, श्रीरघुनाथदास, श्रीजीव आदि निष्किचन गोस्वामीलोग इस सभाके सदस्य थे। उनके पश्चात श्रीनिवासाचार्य, श्रील नरोत्तम ठाकर, श्रील श्यामानन्द प्रभु, श्रील चक्रवर्तीठाकुर, श्रील बलदेव-विद्याभूषण आदि कृष्णैकनिष्ठ सेवक लोग इस सभाके महापात्र और सदस्यरूपसे सेवा करते आ रहे हैं। वर्तमानयुगके शुद्धभक्ति स्रोतके मूल प्रवर्तक जगद्गुरु श्रील भक्ति-विनोदठाकुर इस सभाकी सेवाके उद्देश्यसे

जड़साहित्यकारोंकी मनोधर्मगत संकीर्णता दिखलाकर तथा जगज्जीवोंके आत्यन्तिक मंगलके लिये सज्जनतोषिणी नामक एक पारमार्थिक पत्रिका एवं शताधिक ग्रन्थोंकी रचना कर पारमार्थिक साहित्य-जगतमें एक युगान्तर आनयन किया है। कैतवरहित भक्तभागवत और ग्रन्थ- भागवतको छोड़कर और कोई ऐसा नहीं कर सकता। अतएव कहा गया है—

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षया ॥
भा० १।५।१०

मानस सरोवरके कोमल कमलवनके निवासी राजहंस जिस प्रकारसे काक-क्रीडा-स्थल विचित्र अन्नादिपूर्ण उच्छिष्ट गर्तमें कदापि रुचि नहीं रखते,उसी प्रकार भक्तलोग भी नानाप्रकारके शब्दाडम्बरपूर्ण होने पर भी हरीकथारसविहीन वाक्य या ग्रन्थका नीरस जानकर परित्याग करते हैं।

(क्रमशः)

श्रीकृष्णके नयनोंका जादू

बतलादो क्या-क्या छिपा हुआ,
दिलदार तुम्हारी आँखों में,
सब दृश्य उपस्थित दर्शनीय है,
राम ! तुम्हारी आँखों में ॥१॥

है प्रेम सरोवर दाएँ में,
है दान सरोवर बाएँ में।
पलकोंमें पल-पल करुणाकी,
सरिता बहती है आँखों में ॥२॥

वैराग्य भरा दुनियाँ भर का,
अनुराग भरा दुनियाँ भर का।
फिर भी सब में समान रहते,
है माया भारी आँखों में ॥३॥

जब मैं एक दिवस रो उठी विलख,
तब सम्मुख सहसा दर्श हुआ।
आह कितने मोहक लगते हो,
है जादू भारी आँखों में ॥४॥

यह जगत बनाया है कैसे,
बतलादो आप कहाँ रहते।
गर रहते हो पास मेरे,
क्यों दर्शन आकर नहीं देते ॥५॥

हम रहें आपकी आँखों में,
या आप हमारी आँखों में,
बतलादो क्या-क्या छिपा हुआ,
नटराज ! तुम्हारी आँखोंमें ॥६॥

— सरोज "गुप्तेश"

प्रचार प्रसंग

श्रीगौडीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजने बिहारमें संथाल परगनाके धाधिका, कुमड़ाबाद, सारसाजोल आदि स्थानोंमें कुछ दिन प्रचार कर उत्तर बंगालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार किया। उनके साथ श्रीकानाइलाल ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी आदि थे। वहाँसे प्रस्थान कर उन्होंने आसाम प्रदेशके गोलोकगंज, विलासीपाड़ा, धूबडी आदि स्थानों में हरिकथाका प्रचुर कीर्त्तन किया। वहाँसे पुनः गोलोकगंज आकर स्थानीय हाईस्कूलमें २-३ भाषण प्रदान किया। वहाँसे सिन्दुराइ गाँव, कुचबिहारके सब डिविजन तूफानगंज आदिमें कुछ दिन प्रचार कर कुचबिहार शहरमें पहुँचे। वहाँसे दीनहाटा होकर माथाभांगा पहुँचे। वहाँ विपुल रूपसे हरिकथाका प्रचार कर श्रीधाम नवद्वीप प्रत्यावर्त्तन किया।

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव

१८ आषाढ़, ३ जुलाई, शुक्रवारको समितिके मूलमठ और सभी शाखा मठोंमें ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव हरि-कीर्तनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी-गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सवेरे तथा शामको श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों और पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया एवं उनकी अप्राकृत शिक्षाओं और अलौकिक जीवनीपर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई।

श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा-महोत्सव

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप तथा शाखामठ, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचूड़ामें गत १९ आषाढ़, ४ जुलाई से २८ आषाढ़, १३ जुलाई तक श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। १९ आषाढ़को गुण्डिचा-मार्जन, २० आषाढ़को रथयात्रा, २४ आषाढ़को श्री हेरा-पञ्चमी या श्रीलक्ष्मीविजय और २८ आषाढ़ को पूर्ण रथयात्राके महोत्सव सम्पन्न हुए। उत्सवोंमें आयोजित सभाओंमें समितिके वर्त्तमान आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज, अन्यान्य-त्रिदण्डि संन्यासी महोदयों और ब्रह्मचारियोंके भाषण, प्रवचन कीर्त्तनादि हुए। छाया चित्र द्वारा श्रीश्रीगौर-लीला और श्रीश्रीकृष्णलीलाकी विभिन्न निगूढ़ शिक्षाओं और तत्त्वोंपर प्रकाश डाला गया। निमन्त्रित और अनिमन्त्रित हजारों व्यक्तियोंको श्रीमहाप्रसाद-वितरण किया गया।

—प्रकाशक

श्रीभागवत-पत्रिकाका १६वें वर्षमें पदार्पण

श्रीभागवत-पत्रिकाके १५ वर्ष पूर्ण हो चले हैं । श्रीपत्रिका अपने १६वें वर्षमें पदार्पण कर ज्ञानालोककी अलौकिक आभासे युक्त अपना भक्ति-सौरभ जगतमें प्रकीर्ण कर रही है । पतिव्रता नारी अन्य उद्देश्य रहित होकर एकमात्र अपने पतिका ही प्रीति-विधान सर्वदा करती रहती है । उसी प्रकार शुद्धा सरस्वतीरूपा श्रीभागवत-पत्रिकाका एकमात्र उद्देश्य परब्रह्म स्वयं भगवान श्रीकृष्णका प्रीति-विधान ही है । एकमात्र भगवन्नाम और भगवत्कथाके आचार-प्रचार द्वारा ही भगवान् गौरचन्द्रको प्रसन्नता हो सकती है । एक पतिव्रता नारीको अपने पतिका नाम न ग्रहण करना चाहिए । अतः हमें भी अपने परमपति भगवानका नाम नहीं ग्रहण करना चाहिए—ऐसा कोई कहें, तो उसका उत्तर यही है कि पतिव्रता नारी यथार्थमें वही है जो अपने पति की आज्ञाको काय-मनोवाक्यसे पालन करती है । भगवान्‌की आज्ञा है कि उनका नाम उच्च स्वरसे ग्रहण किया जाय । अतएव ऐसा करने पर ही उनकी यथार्थ सेवा होगी । जो व्यक्ति उच्च-संकीर्त्तनके विरोधी हैं, वे लोग यथार्थ भगवद् भक्त कहे नहीं जा सकते । वे लोग भगवद् आज्ञाके अवज्ञाकारी मात्र हैं । भगवन्नाम-ग्रहण ही परम भक्तियोग या परम धर्म है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥
(भा० ६ । ३ । २२)

उच्च-संकीर्त्तनकी सबसे बड़ी विशेषता या महानता इसीमें है कि उच्च-स्वरसे भगवन्नामका कीर्त्तन करने पर कीर्त्तनकारी और श्रवणकारी दोनोंका कल्याण होता ही है । साथ ही साथ जहाँ-जहाँ कीर्त्तन-ध्वनि गूँजती है, वहाँके पशु-पक्षियों आदियोंकी भी सुकृति होती है । उच्च कीर्त्तन करनेपर श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण—भक्तिके ये तीनों अङ्ग अनायास ही साधित हो जाते हैं ।

मनुष्य जन्म लेने पर जीव अपनेको भूलकर माता-पिता-भाई-बन्धुओंके प्रेममें मोहित होकर अचेतनवत् हो जाता है । उसकी शैशवावस्था अज्ञानतामें बीत जाती है । बाल्यावस्था साथी बालकोंके साथ खेल-कूद और चञ्चलतामें बीत जाती है । यौवनावस्था में इन अवस्थाओंको पार कर ज्ञानकी यथार्थ भूमिका पर पहुँचता है । इस अवस्थामें ही वह पूर्णतः कर्मक्षेत्रमें उतरनेका सामर्थ्य प्राप्त करता है । इस अवस्थामें जो व्यक्ति अपना ठीक-ठीक पथ निर्णय कर लेता है, उसका भविष्य-जीवन सुखमय और शान्तिपूर्ण बन जाता है। ऐसा करनेमें असमर्थ व्यक्ति भविष्य-जीवनमें

बहुत क्लेश और विपत्तियोंके भागीदार बनते हैं। मनुष्य जीवनका परम कर्त्तव्य है कि यौवनावस्थासे अवश्य ही हरिभजनमें तत्पर हो जाय। क्योंकि एकबार भी यदि उसका चित्त गृह-संसारके आसक्तिमें फँस जाय, तो वह सहज ही माया-ममताकी दृढ़ फाँसीसे अपने आपको छुड़ाकर हरिभजनमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। इन्द्रियोंके प्रबल होने पर उसका मन उसके वशमें नहीं रहता। वह कदापि न पूरण होनेवाली कामनाओं की पूर्त्तिको ही अपने जीवनकी सार्थकता समझता है। कामिनियोंके हाथोंकी कठपुतली बनने पर और सन्तान-बन्धु-बाधवोंके मोहमें फँसने पर वह अपना उद्धार करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है ?—

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।
स्नेहपाशैर्दृढबद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥

(भा० ७।६।९)

भक्तराज प्रह्लादजीने केवल यौवनकालसे ही नहीं, बल्कि कौमार-कालसे ही भगवद्-भजन करनेके लिए कहा है। क्योंकि उस अवस्थामें मनुष्यकी बुद्धि सरल होती है, जिस किसी ओर मोड़ी जा सकती है। एक कच्चे बाँसको जिस ओर चाहे, उसी ओर मोड़ सकते हैं। किन्तु पके बाँसको मोड़ने पर वह टूट जाता है। मनुष्य बाल्यकालमें जैसी प्रकृतिको अपना लेता है, उसके विचार अन्त समय तकके लिए वैसे ही बन जाते हैं। विचारोंके परिपक्व होने पर उन्हें बदलना अत्यन्त कठिन है।

ऐसा सोचना कि युवावस्थामें गृह-संसारके सुखोंको भोग लें, पीछे वृद्धावस्था आनेपर हरिभजन किया जाय,—केवल मूर्खतामात्र है। क्योंकि वृद्धकालमें उसका शरीर दुर्बल होनेसे इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और उसमें करने-धरनेकी कोई शक्ति नहीं रह जाती। मृत्यु उसके सिर पर मंडराती रहती है। अतः सांसारिक सुखके लिए चेष्टा करना अनावश्यक है। स्वयं मिलनेवाली वस्तुओंके लिए चेष्टा करना आयु और शक्तिको व्यर्थ गँवानामात्र है; क्योंकि इसके द्वारा परममंगलस्वरूप भगवत्चरणोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती—

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥

(भा० ७ । ६ । ४)

यह मनुष्य जीवन बड़ा ही अनित्य और विपत्तियोंसे पूर्ण है। फिर भी यह शरीर भगवत्प्राप्तिका एकमात्र साधन है—'शरीर-माद्यं खलु धर्म साधनम्।' जब तक यह शरीर रोगादि द्वारा ग्रस्त होकर मृत्युमुखमें पतित न हो जाय, तभी तक बुद्धिमान व्यक्तियोंको अपने आत्मकल्याण के लिए चेष्टा करनी चाहिए—

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ।
शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्यते पुष्कलम् ॥

(भा० ७ । ६ । ५)

भगवानके जितने भी स्वरूप हैं, उन सब में श्रीकृष्ण स्वरूप ही सर्वश्रेष्ठ हैं । वे ही समस्त रसोंके आधार, समस्त कलाओंसे परिपूर्ण स्वयं भगवान हैं । वे ही परात्पर और परिपूर्णतम तत्त्व हैं—

१) ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥
(ब्रह्म-संहिता ५ । १)

२) सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीशकृष्णस्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेष रसस्थितिः ॥
(भ०र०सि०)

३) रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो:
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥
(श्रीब्रह्म-संहिता ५म अ०)

भगवान श्रीकृष्णकी जितनी भी लीलाएँ हैं, उनमें कैशोर-लीला ही सर्वश्रेष्ठ है । इस लीलाकी सर्वश्रेष्ठता इसीसे सिद्ध होती है कि इसीमें समस्त प्रकारके रसोंकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है एवं भगवान अपनी भगवत्ताका सम्पूर्ण रूपसे गोपन कर इस लीला-भजनकारी भक्तोंके निकट एकान्त वशीभूत हैं । अतएव इस रसके भक्तोंकी सर्वश्रेष्ठता है । अतएव श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर कहते हैं—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
श्रीमद् भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः ॥

इसी रसमें भगवान्‌की भक्त-वात्सल्यता पूर्णतम रूपसे व्यक्त हुई है । श्रीकृष्णका कैशोर वयस ही सब रसों का आधार है । इसी सर्वश्रेष्ठ मधुर रसका स्वयं आस्वादन कर जगज्जीवोंको इस रसमें प्रवेश प्रदान करनेके लिए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण राधाभाव और कान्ति अङ्गीकार कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें कालकलिमें प्रकट हुए—

अर्नपितचरीं चिरात् करुणयाऽवतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्व भक्तिश्रियम् ।
हरिः पुरटः सुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥
(विदग्धमाधव नाटक, १म अंक, २य श्लोक)

स्वयं भगवान श्रीचैतन्यमहाप्रभुने हमें जो शिक्षाएँ दी हैं, वे ही सर्वोत्तम हैं । ऐसी शिक्षाएँ आज तक दूसरे किसी आचार्यने या अन्य किसी अवतारने नहीं दीं । पूर्व पूर्व आचार्योंके सिद्धान्तोंमें जो वक्तव्य बाकी रह गया था, उसे उन्होंने ही पूरा किया । वेदादि शास्त्रोंमें कहीं-कहीं अद्वैतविचारधारा और कहीं द्वैतविचारधारा देखी जाती है । इन दोनों विचारोंमें परस्पर विरोधिता नहीं है । जहाँ कहीं भी अद्वैत विचाराधारा है, वह द्वैत विचारधाराका ही पोषक है—

'या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते
सविशेषमेव ।'

ईश्वरमें और जीवमें परस्पर भेद और अभेद दोनों ही वर्त्तमान हैं । अभेद केवल चित् धर्मकी ऐक्यताके कारण और आंशिक रूपसे मात्र है, वस्तुतः नहीं । भेदकी ही

प्रधानता अधिक है। श्रीमन्महाप्रभुने वेदोंके भेद और अभेद प्रतिपादक श्रुतियोंमें परस्पर सामंजस्य और परस्पर सम्बन्ध दिखलाकर अपना सम्पूर्ण वैज्ञानिक 'अचिन्त्यभेदाभेद" सिद्धान्त प्रकट किया है। सम्प्रदाय-प्रणालीकी आवश्यकता और उसके यथार्थ ध्येयको उन्होंने स्पष्टरूपसे प्रकाश किया है। श्रीकृष्ण तत्त्वकी यथार्थता और सर्वश्रेष्ठता एवं उनकी गूढ़-लीलाके गुप्त-रहस्य उन्होंने ही प्रकाश किया है। श्रीकृष्ण-लीलाओंके सम्बन्धमें साधारण लोगोंकी भ्रममय और अपराधयुक्त धारणाओं और विचारोंका उन्होंने शास्त्रोक्त युक्तिद्वारा समाधान किया है। उनके अनुगत महाजनों, छः गोस्वामियों तथा परवर्त्ती महापुरुषोंने अपने ग्रन्थोंमें इस विषयका विशेष रूपसे विश्लेषण किया है। यथार्थ ज्ञानी और तत्त्वदर्शी व्यक्ति अवश्य ही श्रीमन्महाप्रभुके अपूर्व और अलौकिक सिद्धान्तोंको स्वीकार करेंगे।

ऐसे महावदान्य—शिरोमणि श्रीमन्महाप्रभुके विचारों और सिद्धान्तोंको ग्रहण करने पर ही हमारा यथार्थ कल्याण हो सकता है। इसे सभी जातिके, सभी देशके, सभी कालके, युवा-वृद्ध-नारी-बालक, ऊँच-नीच, लिखे-पढ़े, अनपढ़ सभी ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु ऐसे महान् भगवद् अवतारकी अवतरण-भूमि भारतवर्षमें आजकल नाना प्रकारकी राजनैतिक विषमताएँ, नाना प्रकारके भयङ्कर उपद्रव, परस्पर वैमनस्य-हिंसा-द्वेष, सङ्कीर्ण-प्रान्तीयवादिता, राष्ट्र विरोधी कार्य, चोरी-डकैती-हत्याएँ, खाद्योंमें मिलावट, रिश्वत-घूसखोरी, छात्र-आन्दोलन, बेरोजगारी, बढ़ती आबादी, नास्तिकताका चरम अवस्था, आदि जमस्याएँ अपना भयंकर रूप प्रकट कर विनाशकारी ताण्डव नृत्य कर रही हैं। आजकल के हमारे कुछ तथाकथित नेता धर्म-निरपेक्षताका नाम लेकर हमारे वैदिक धर्म और संस्कृतिका नाम-निशान भी मिटा देने पर तुले हुए हैं। धर्म की अवहेलना कर गो-विप्र-साधु-सज्जनोंकी घोर हिंसा की जा रही है। अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके नामपर बौद्ध-ईसाई-मुसलमान धर्मावलम्बी व्यक्तियोंको बढ़ावा देकर हिन्दू-धर्मावलम्बियोंको सब अपराधोंका दण्डभागी बनाकर उनका सर्वनाश करनेका कुचक्र चल रहा है।

ऐसी परिस्थितिमें हमारे सनातन धर्म और संस्कृतिका तीव्रतम रूपसे आचार-प्रचार करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह कार्य हमारे महाजनरचित भक्तिग्रन्थादि प्रकाशन, श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत वाणीका निर्भीक एवं निरपेक्ष होकर कीर्त्तन करनेसे ही संभव-पर है। हमारी पत्रिका निरपेक्ष सत्य और आदर्शवादिताका मूर्त स्वरूप है। निरपेक्ष सत्यको कहनेमें कोई संकोच या भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। विश्वमें नास्तिकोंकी अधिकता होनेपर भी श्रीरूपानुग-धारा के वैष्णव लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं—

जीवितं वरं विष्णुभक्तस्य पञ्चदिनानि।
न कल्पसहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे ॥

हमारा उद्देश्य 'कीर्त्तनीयः सदा हरिः' की स्वर्ण-पताका सर्वत्र फहराना है। लाभ-पूजा-मान-सम्मान-प्रतिष्ठादिके हम प्रार्थी नहीं हैं। निरपेक्ष सत्यकी रक्षाके लिए घोर से घोर विपत्तियों एवं कठिनाईयोंका सामना करनेके लिए प्रस्तुत रहना होगा। तभी हम लोग श्रीमन्महाप्रभुके प्रदत्त 'अनर्पितचरीं' प्रेमके यथार्थ अधिकारी बनेंगे और जगतका आमूल परिवर्त्तन कर सकेंगे।